इकाई 7 : स्वर सन्धि

इकाई की संरचना

7.1 प्रस्तावना

सन्धि के अर्थ और प्रक्रियात्मक ज्ञान से सम्बन्धित यह प्रथम इकाई है। इससे पहले की इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकेंगे कि चौदह माहेश्वर सूत्र क्या हैं प्रत्याहार का निर्माण किस प्रकार किया जाता है वर्णों के उच्चारण के स्थान एवं प्रयत्न क्या हैं एवं इनकी संख्या कितनी है संहिता आदि संज्ञा किसे कहते हैं?

संज्ञा प्रकरण का परिचय प्राप्त करने के पश्चात् आप स्वर सन्धि का विधिवत अध्ययन कर पाएंगे। इस इकाई में मुख्य रूप से यण्, अयादि, गुण, दीर्घ एवं वृद्धि सम्बन्धी सूत्रों की व्याख्या के साथ उनके उदाहरणों को प्रक्रिया के माध्यम से प्रस्तुत किया जायेगा।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप स्वर सन्धि के प्रमुख भेदों यण्, अयादि, गुण, दीर्घ एवं वृद्धि सम्बन्धी विधायक सूत्रों को उदाहरण के साथ समझा सकेंगे।

7.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

1. स्वर सन्धि के प्रमुख भेदों को बतायेंगे।

2. यण्, अयादि, गुण आदि सन्धि के विधायक सूत्रों को व्याख्या सहित समझा सकेंगे।

3. यण् आदि सन्धि की प्रक्रिया को जानकर अपनी भाषा एवं लेखन में उसका ठीक प्रकार से प्रयोग कर पायेंगे।

4. स्वर सन्धि के उपर्युक्त भेदों का संस्कृत व्याकरण के अन्य प्रकरणों में उपयोग भी बता सकेंगें।

5. यण् आदि स्वर-सन्धि को जानकर हिन्दी आदि भाषाओं की स्वर-सन्धि सम्बन्धी समस्याओं को सुलझा पायेंगे।

6. किसी भी भाषा में स्वर-सन्धि के समान संरचना को स्थापित करने की विधि का विकास करेंगे।

7. आधुनिक भाषा-विज्ञान में भी उसका भली-भाँति उपयोग कर सकेंगे।

8. संस्कृत के अन्य शास्त्र के अध्ययन, अध्यापन, अर्थनिर्धारण आदि में इसका उपयोग कर पायेंगे।

7.3 स्वर सन्धि : अर्थ एवं प्रतिपाद्य

संस्कृत के प्रत्येक शब्द के अन्त में कोई स्वर, व्यंजन, अनुस्वार अथवा विसर्ग अवश्य रहता है तथा उस शब्द के आगे जब किसी दूसरे शब्द के होने से उनका मेल होता है तब पूर्व शब्द के

अन्त वाले स्वर, व्यंजन आदि में कुछ परिवर्तन हो जाता है। उस प्रकार के मेल हो जाने से जो परिवर्तन होता है, उसे सन्धि कहते हैं। 'सन्धि' का अर्थ है 'मेल'। उस परिवर्तन से कहीं पर दो अक्षरों के स्थान पर एक नया अक्षर हो जाता है, जैसे – गंगा+ईश: गंगेश:, कहीं पर एक अक्षर का लोप हो जाता है, जैसे – छात्रा: गच्छन्ति छात्रा गच्छन्ति, और कहीं पर दो अक्षरों के बीच में एक नया अक्षर आ जाता है, जैसे – धावन् अश्व: धावन्नश्व: । पहले उदाहरण में 'आ''ई- 'ए', दूसरे उदाहरण में विसर्ग का लोप तथा तीसरे उदाहरण में एक अतिरिक्त 'न्' उपस्थित हो गया। इस प्रकार वर्णों के मेल होने को ही सन्धि कहते हैं।

सन्धियॉं मुख्य रूप से तीन प्रकार की होती हैं :- 1. स्वर (अच्) सन्धि, 2. व्यंजन (हल्) सन्धि और 3. विसर्ग सन्धि।

एक स्वर के साथ दूसरे स्वर के मेल होने से जो परिवर्तन होता है, उसे स्वर सन्धि कहते हैं। संज्ञा प्रकरण के अध्ययन से आप संहिता के विषय में अवश्य जान गये होंगे। जहॉं पर "पर: सन्निकर्ष: संहिता" इस सूत्र में बताया गया है कि – **वर्णानामतिशयित: सन्निधि: संहिता संज्ञ: स्यात्** अर्थात् वर्णों के अतिशयित (अत्यधिक समीपता) सामीप्य को संहिता कहते हैं। स्वर सन्धि के लिए संहिता की अनिवार्यता होती है। संस्कृत वाक्य में सन्धि-कार्य वैकल्पिक है अर्थात् वक्ता की इच्छा पर निर्भर करता है किन्तु एक पद में, धातु और उपसर्ग के मिलने पर तथा समास में संहिता अनिवार्य रूप से होती है -

संहितैकपदे नित्या नित्या धातूपसर्गयो:।
नित्या समासे वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते।

उदाहरण के लिये-

(क) अनिवार्य -

1. पदगत सन्धि – बालकेन (बालक + इन)
2. उपसर्ग और धातु (क्रिया) के बीच सन्धि – उपैति (उप +एति)
3. समासगत सन्धि – सूर्योदय: (सूर्यस्य उदय:, सूर्य + उदय:

(ख) वैकल्पिक या वक्ता की इच्छा पर निर्भर:-

वाक्य में पदों के बीच सन्धि -

सुरेशो ग्रामादागच्छति।

अथवा

सुरेश: ग्रामात् आगच्छति

प्रस्तुत स्वर सन्धि प्रकरण में यण्, अयादि, गुण, दीर्घ और वृद्धि सन्धि के नियमों का विधान करने वाले सूत्रों की उदाहरण के साथ व्याख्या प्रस्तुत की जायेगी।

7.4 स्वर सन्धि के प्रमुख भेद

स्वर सन्धि के भेदों में यण्, अयादि, गुण, दीर्घ एवं वृद्धि के नाम प्रमुखता से लिए जाते हैं। यहॉं हम क्रमश: इनके विधायक सूत्रों की सोदाहरण व्याख्या जानेंगे।

8.4.1 यण् सन्धि (य्,व्, र्, ल्)

नियम – ह्रस्व या दीर्घ इ, उ, ऋ, लृ के बाद किसी असवर्ण स्वर के आने पर इ का य्, उ का व्, ऋ का र् तथा लृ का ल् हो जाता है। यण् सन्धि मुख्यत: यण् प्रत्याहार पर आधारित है। जैसा कि आप 'संज्ञा प्रकरण' में जान चुके हैं कि यण् प्रत्याहार के अन्तर्गत य्, व्, र्, तथा ल् वर्ण आते हैं तथा ये वर्ण अन्त:स्थ कहलाते हैं। अन्त:स्थ का अर्थ है बीच में रहने वाला। अर्थात् ये चार वर्ण स्वर और व्यंजन के बीच में स्थित हैं। प्रस्तुत प्रसंग में इ, उ, त्र अथवा लृ के बाद यदि स्वर वर्ण हो तो इ, उ, ऋ अथवा लृ के स्थान में क्रमशः य्, व्, र् अथवा ल् आदेश होता है। तात्पर्य यह है कि इ य् में, उ व् में, ऋ र् में तथा लृ ल् में परिवर्तित हो जाता है। इन बातों को पाणिनि ने निम्नलिखित सूत्र के माध्यम से कहा है -

सूत्र- इको यणचि। 6.1.77

इक: स्थाने यण् स्यात् अचि संहितायां विषये। सुधी उपास्य: इति स्थिते।

अर्थात संहिता की स्थिति में इक. (इ, उ, त्र, लृ) के स्थान में यण् (य्, व्, र्, ल्) आदेश हो। यहॉं यह ध्यान देने योग्य है कि दो स्वर वर्णों के मध्य अत्यधिक समीपता हो तथा इ, उ, ऋ अथवा लृ के बाद कोई स्वर हो तब क्रमश: उपर्युक्त परिवर्तन होता है उदाहरण – सुधी + उपास्य:। यहॉं 'ध्' के बाद आने वाले 'ई' के बाद 'उ' है। अत: स्वर 'उ' के पर में रहने पर 'ई' का 'य्' आदेश हो जाता है तथा 'सु ध् य् + उपास्य: यह स्थिति बन जाती है।

यहॉं यह विचारणीय है कि 'सुधी + उपास्य:' में इक् तीन हैं यथा – 'स्' के बाद 'उ' (इक् है), 'ध्' के बाद 'ई' (इक् है) तथा 'उपास्य:' का पहला वर्ण 'उ' (इक् है)। इसके साथ ही प्रथम 'उ' के आगे 'ध्' के बाद आने वाला स्वर 'इ' है, इसी 'इ' के बाद 'उपास्य:' का पहला वर्ण स्वर 'उ' है तथा 'उ' के आगे 'प्' के बाद आने वाला स्वर 'आ' है। इस प्रकार तीनों इक् (उ, ई तथा उ) के आगे स्वर वर्णों के विद्यमान रहने से यण् सन्धि हो सकती है।

परन्तु ऐसा सम्भव नहीं है क्योंकि पाणिनि का विधान है -

सूत्र- तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य। 1.1.66

सप्तमी निर्देशेन विधीयमानं कार्यं वर्णान्तरेणाव्यवहितस्य पूर्वस्य बोध्यम्। अर्थात् सप्तम्यन्त (सप्तमी विभक्ति जिस शब्द के अन्त में है) पद का उच्चारण कर जिस कार्य का विधान किया जाता है, वह कार्य वर्णान्तर से अव्यवहित (व्यवधान रहित) पूर्व वर्ण के स्थान में होता है।

तात्पर्य यह है कि जिस वर्ण के आगे रहने पर जिस वर्ण के कार्य का विधान किया गया हो उन दोनों वर्णों के बीच में किसी अन्य वर्ण को नहीं आना चाहिए। उपर्युक्त उदाहरण में सप्तमी विभक्ति वाला पद है 'अचि' ('अच्) का सप्तमी विभक्ति एक वचन में 'अचि' रूप बनता है) अर्थात् स्वर वर्णों के परे रहने पर 'इक्' (इ, उ, ऋ तथा लृ) अथवा अच् (स्वर वर्णों) के बीच में किसी अन्य वर्ण को नहीं रहना चाहिए। उपर्युक्त उदाहरण में प्रथम 'उ' और 'ई' के बीच में 'ध्', द्वितीय 'ई' आ और 'उ' के बिच में कोई व्यवधान नहीं तथा तृतीय 'उ' और 'आ' के बीच में

'प्' व्यवधान (बाधा) है। इस प्रकार केवल द्वितीय 'ई' और 'उ' बीच में किसी अन्य वर्ण की बाधा नहीं है। अत: सूत्र के अनुसार 'उ' के परे रहते 'ध्' के बाद आने वाले 'ई' को 'य्' हो जाता है। रूप इस प्रकार है – सु ध् य् + उपास्य: ।।

यहॉ एक अन्य प्रश्न उपस्थित होता है कि 'यण्' प्रत्याहार में चार वर्ण य्, व्, र्, तथा ल् हैं। उपर्युक्त उदाहरण में 'ई' का परिवर्तन 'य्' में ही क्यों होता है, व्, र्, या ल् में क्यों नहीं? इसका उत्तर पाणिनि ने निम्नलिखित सूत्र से दिया है-

सूत्र - स्थानेऽन्तरतम:। 1.1.50 प्रसंगे सति सदृशतम् आदेश: स्यात्।

अर्थात् एक स्थानी के स्थान पर कई आदेशों के उपस्थित होने पर उनमें जो स्थानी के सबसे सदृश हो, उसी का आदेश हो।

उपर्युक्त उदाहरण में एक स्थानी 'ई' है तथा उसके आदेश य्, व्, र् तथा ल् चार हैं। किन्तु संज्ञा प्रकरण की इकाई के अध्ययन से आप जान चुके होंगे कि 'ई' का उच्चारण स्थान तालु है तथा 'य्' का भी उच्चारण स्थान तालु ही है। व्, र् तथा ल् के उच्चारण स्थान तालु से भिन्न हैं, अत: 'ई' के सदृश नहीं हैं। इस प्रकार 'ई' का 'य्' आदेश हुआ, अन्य नहीं। फलत: 'सुध्, य् + उपास्य:' को मिला देने पर 'सुध्युपास्य:' यह रूप सिद्ध हुआ।

सुध्, य् + उपास्य: में यद्यपि वर्ण संयोग करने पर सुद्ध्युपास्य: रूप बन जाता है किन्तु इसका विस्तृत प्रक्रियात्मक रूप इस प्रकार है –

सूत्र- अनचि च 8.4.47

अच: परस्य यरो द्वे वा स्तो न त्वचि। इति धकारस्य द्वित्वम्।

अर्थात अच् के बाद यर् प्रत्याहार में आने वाले वर्णों को द्वित्व होता है, यदि उनके बाद कोई स्वर न हो। इस सूत्र से ध् को द्वित्व होकर सु ध् ध् य् + उपास्य: बन जाता है। इसके पश्चात् प्रस्तुत सूत्र का आगमन होता है।

सूत्र- झलां जश् झशि 8.4.53

स्पष्टम् इति पूर्व धकारस्य दकार:।

स्पष्ट ही है झल् प्रत्याहार को जश् प्रत्याहार होता है, यदि झश् प्रत्याहार बाद में हो। इस सूत्र से सु ध् ध् य् + उपास्य: में पूर्व के धकार को दकार हो गया और सु द् ध् य् + उपास्य: बन गया। यहॉ पर पुन: एक विशेष बात यह आती है कि **संयोगान्तस्य लोप: 8:2.2.3 सूत्र कहता है – संयोगान्तं यत्पदं तस्य लोप: स्यात् ।"** अर्थात संयोगान्त जो पद हो उसका लोप हो जाता है। सु द् ध् य् + उपास्य: की स्थिति में द् ध् य् को संयोग संज्ञा होगी तथा संयोगान्तस्य लोप: सूत्र के अनुसार सु द् ध् य् इस पूरे पद का लोप हो जायेगा। किन्तु –

सूत्र- अलोऽन्त्यस्य 1:1.52

षष्ठी निर्दिष्टस्यान्त्यस्याल् आदेश: स्यात् । इति यलोपे प्राप्ते अर्थात् षष्ठी विभक्ति से निर्दिष्ट को जो आदेश विहित रहता है वह उसी के अन्तिम अल् के स्थान में रहता है। अत: इस

परिभाषा सूत्र के अनुसार संयोगान्त पद के अन्तिम अल् को ही लोप प्राप्त होगा परन्तु यण: प्रतिषेधो वाच्य: वार्तिक के अनुसार यण् का प्रतिषेध करना चाहिए। अत: लोप का निषेध होकर सु द् ध् य् + उपास्य: = सुद्ध्युपास्य: और "अनचि च" इसके विकल्प से "सुध्युपास्य:" दोनों रूप बनते हैं।

इसी प्रकार 'मध्वरि:' – मधु + अरि: में पूर्व वर्णित प्रक्रिया के आधार पर 'ध्' के बाद आने वाले 'उ' के परे अच् (स्वर वर्ण) 'अरि' का पहला वर्ण 'अ' है। अत: 'इको यणचि', 'तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य' तथा 'स्थानेऽन्तरतम:' सूत्रों के आधार पर किसी अन्य वर्ण की बाधा से रहित 'उ' का, स्वर वर्ण 'अ' के परे रहने पर, अत्यन्त सदृश 'व्' आदेश होता है, क्योंकि 'उ' का उच्चारण स्थान ओष्ठ तथा 'व्' का उच्चारण स्थान 'दन्त और ओष्ठ' है। 'ओष्ठ 'उ' तथा 'व्' दोनों का उच्चारण स्थान एक होने से 'यण्' के अन्य वर्ण य्, र् तथा ल् की अपेक्षा सदृशतम है। अत: 'उ' का 'व्' में परिवर्तन हुआ और मध्व् + अरि: - 'मध्वरि:' रूप सिद्ध हुआ।

धात्रंश: - धातृ + अंश:' यहां 'त्' के बाद आने वाले 'ऋ' से परे अच् (स्वर वर्ण) 'अ' है। पूर्वोक्त सूत्र – 'इको यणचि', 'तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य' तथा 'स्थानेऽन्तरतम:' के आधार पर 'ऋ' का 'अ' परे रहने पर 'र्' आदेशहुआ। 'र्' आदेश का कारण पूर्ववत् है। 'ऋ' तथा 'र्' दोनों वर्णों का उच्चारण स्थान मूर्धा होने के कारण दोनों सदृशतम हैं। 'यण्' के अन्य वर्ण 'य्, व् तथा ल् अन्य – अन्य स्थानों से उच्चरित होने के कारण 'र्' से पूर्णत: भिन्न हैं। इस प्रकार 'धात्र् + अंश: - धात्रंश: यह रूप सिद्ध हुआ।

लाकृति: - लृ + आकृति: - यहॉं 'लृ' का अच् (स्वर वर्ण) 'आ' परे रहते पूर्वोक्त सूत्रों से 'ल्' यण् आदेश हुआ। 'लृ' यण् आदेश हुआ। 'लृ' एवं 'ल्' – ये दोनों वर्ण दन्त स्थान से उच्चरित होने से सदृशतम हैं। फलत: ल् + आकृति: यह रूप सिद्ध हुआ। उपर्युक्त चार उदाहरण 'सुध्युपास्य:', 'मध्वरि:', 'धात्रंश:' तथा 'लाकृति:' ' इक् (इ, उ, ऋ, तथा लृ) के चार आदेश क्रमश: य्, व्, र् तथा ल् के हैं। अन्य उदाहरण भी इसी प्रक्रिया के आधार पर साध्य होंगे।

अभ्यास प्रश्न 1 –

(1) निम्नलिखित में सन्धि कीजिये -

क. इ/ ई – य्

अभि + उदय:

यदि + अपि

इति + आदि:

प्रति + उपकार:

नि + ऊन:

प्रति + एकम्

देवी + अनुग्रह:

नदी + एव

यादृशी + उक्ति:

(ख) उ/ ऊ – व्

अनु + अय:

सु + आगतम्

अनु + एषाम्

वधू + आगम

(ग) ऋ – र्

पितृ + इच्छा

मातृ + आज्ञा

(घ) लृ – ल्

लृ + आकृति

(2) सन्धि –विच्छेद कीजिये

इत्युक्त्वा

(क) अत्याचार:

(ख) गुर्वादेश:

(ग) पित्रुपदेश:

(घ) मात्रनुमति:

(ड.) भ्रात्रुक्तम्

(च) वध्वलंकार:

(छ) गौर्यायाति

(झ) वार्यस्ति

(ञ) दध्यानय

7.4.2 अयादि सन्धि (अय्, अव्, आय्, आव्)

नियम - यदि ए, ओ, ऐ अथवा औ के बाद कोई स्वर वर्ण हो तो ए का अय्, ओ का अव्, ऐ का आय् तथा औ का आव् हो जाता है। जैसा कि उपर्युक्त नियम से ज्ञाता होता है कि इस सन्धि में अय्, अव्, आय् अथवा आव् आदेश होता है। अत: इसी आधार पर इसका नामकरण अयादि (अय् + आदि अर्थात् अय्, अव्, आय् अथवा आव्) है। इस तथ्यको पाणिनि ने निम्नलिखित सूत्र के माध्यम से बताया है-

सूत्र - एचोऽयवायाव:। 6.1.78 एच: क्रमात् अय्, अव्, आय्, आव् एते स्युरचि।

अर्थात् एच् (ए, ओ, ऐ, औ) के स्थान में क्रमश: अय्, अव्, आय्, आव् आदेश हो, अच् (स्वर वर्ण) के परे रहने पर।

यहाँ एक प्रश्न उपस्थित होता है कि ए के स्थान पर अय्, ओ के स्थान पर अव्, ऐ के स्थान पर आय् तथा औ के स्थान पर आव् – ऐसा क्रमपूर्वक ही क्यों हो, क्रम में परिवर्तन क्यों नहीं हो सकता? इसका उत्तर पाणिनि एक अन्य सूत्र के माध्यम से देते हैं। वह है -

सूत्र- यथासंख्यमनुदेश: समानाम्। 1.3.10 समसम्बन्धी विधिर्य थासंख्यं स्यात्।

अर्थात यदि स्थानी और आदेश की संख्या समान हो तो वहाँ पर आदेश क्रम से (प्रथम को प्रथम, द्वितीय को द्वितीय इत्यादि) होते हैं। तात्पर्य यह है कि एच् प्रत्याहार में चार वर्ण हैं – ए, ओ, ऐ, औ तथा होने वाले आदेशों की संख्या भी चार हैं – अय्, अव्, आय्, आव्।

इस प्रकार स्थानी और आदेशों की संख्या समान (चार-चार) होने के कारण आदेश क्रमपूर्वक ही होंगे। अर्थात् पहले ए को पहला आदेश अय्, दूसरे ओ को दूसरा आदेश अव्, तीसरे ऐ को तीसरा आदेश आय् तथा चौथे औ को चौथा आदेश आव् ही होगा। यहाँ क्रम का उल्लंघन संभव नहीं है। निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

हरये – हरे + ए – यहाँ 'र्' के बाद आने वाला 'ए' एच् प्रत्याहार के अन्तर्गत है ऐसे 'ए' के बाद स्वर वर्ण (अच्) 'ए' है। अत: उपर्युक्त 'एचोऽयवायाव:' सूत्र के अनुसार पूर्व 'ए' को 'अय्' आदेश हो गया। फलत: 'हर् अय् + ए' ऐसा रूप बना। सबको मिलाने के पश्चात् ' हरये ' रूप सिद्ध हुआ।

विष्णवे – विष्णो + ए – यहाँ ' ण् ' के बाद आने वाला 'ओ' एच् प्रत्याहार के अन्तर्गत है। ऐसे 'ओ' के बाद स्वर वर्ण (अच्) 'ए' है। अत: पूर्वोक्त सूत्र के अनुसार ' ओ ' को ' अव् ' आदेश हुआ। फलत- ' विष्ण् अव् + ए ऐसा रूप बना। सबको मिलाने के पश्चात् ' विष्णवे ' यह रूप निष्पन्न हुआ।

नायक: - नै + अक: - यहाँ 'न्' के बाद आने वाला ' ऐ ' एच् प्रत्याहार के अन्तर्गत है। ऐसे 'ऐ' के बाद स्वर वर्ण (अच्) 'अ' है। अत:' एचोऽयवायाव:' सूत्र से 'औ' को 'आव्' आदेश हुआ। फलत: ' प् आव् + अक:' ऐसा रूप बना। सभी को जोड़ने के पश्चात् ' पावक:' रूप सिद्ध हुआ।

उपर्युक्त उदाहरणों के माध्यम से ए, ओ, ऐ, और का स्वर्ण वर्ण परे रहने पर क्रमश: अय्, अव्, आय्, आदेश किस प्रकार होता है – यह आप जान पाये। आगे आप इसके अपवाद को जानेंगे जिसमें अन्य व्यंजन वर्ण के परे रहने पर (आगे रहने पर) ओ, औ को क्रमश: अव्, आव् आदेश होता है। पाणिनि ने इस नियम को निम्नलिखित सूत्र के माध्यम से समझाया है -

सूत्र - वान्तो यि प्रत्यये। 6.1.79

यकारादौ प्रत्यये परे ओदौतोरव् आव् एतौ स्त:। गव्यम्। नाव्यम्।

अर्थात यकारादि प्रत्यय परे रहते ('य' जिसके आदि में है ऐसा प्रत्यय जिसके आगे है) ओ, और के स्थान में क्रमश: अव्, आव् आदेश होता है। ये आदेश वान्त कहे जाते हैं। यथा – गव्यम्, नाव्यम् आदि। इसको उदाहरण के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है।

गव्यम् – गो + यम् – यहॉं 'ग्' के बाद आने वाले 'ओ' के आगे यकारादि प्रत्यय (य् जिसके आदि में है ऐसा प्रत्यय) 'यम्' है। अत: 'वान्तो यि प्रत्यये' सूत्र के अनुसार 'ग्' के बाद आने वाले 'ओ' को 'अव्' ओदश हो गया। इससे 'ग् अव् + यम्' – यह रूप बना। सबको जोड़ने पर 'गव्यम्' रूप सिद्ध हुआ।

नाव्यम् : नौ + यम् – यहॉं 'न्' के बाद आने वाले 'औ' के आगे यकारादि प्रत्यय 'यम्' है। अत: 'वान्तो यि प्रत्यये' सूत्र से 'औ' को 'आव्' आदेश हुआ। फलत: 'न् आव् + यम्' – यह रूप बना। सभी को मिलाने पर 'नाव्यम्' रूप सिद्ध हुआ।

इस प्रसंग में एक अन्य अपवाद भी द्रष्टव्य है -

मार्ग के परिमाण अर्थ में या दूरी के अर्थ में भी 'गो' शब्द के आगे 'यूति:' शब्द आये तो 'ओ' के स्थान में 'अव्' आदेश होता है। वार्तिककार कात्यायन ने इस नियम को निम्नलिखित वार्तिक से कहा है -

वार्त्तिक : अध्वपरिमाणे च। गव्यूति:।

उपर्युक्त उदाहरण गव्यूति: - गो + यूति: में 'ग्' के बाद आने वाले 'ओ' का 'यूति:' (मार्ग के परिमाण अर्थ में) शब्द के आगे रहने पर 'अव्' आदेश होकर 'ग् अव् + यूति:' ऐसा बना। सबको मिलाने पर 'गव्यूति:' (दो कोस) रूप सिद्ध हुआ।

टिप्पणी – पदान्त ए या ओ (पद के अन्त में आने वाले ए या ओ) के बाद 'अ' रहने पर यह नियम लागू नहीं होता। यथा -

वृक्षे + अपि – वृक्षेऽपि

विष्णो + अत्र – विष्णोऽत्र

इन दोनों में पूर्वरूप सन्धि है, अयादि नहीं।

अभ्यास प्रश्न 2 -

1. निम्नलिखित में सन्धि कीजिये –

(I) ए – अय्

क. शे + अनम्

ख. ने + अनम्

ग. चे + अनम्

घ. शे + आन:

ड. शे + इत:

(II) ओ – अय्

क. पो + अन:

ख. लो + अन:

ग. पो + इत्रम.

घ. भो + अनम्

ड. भानो + ए

(III) ऐ – आय्

क. गै + अन:

ख. परिचै + अक:

(IV) औ – आव्

क. भौ + अक:

ख. नौ + इक:

ग. भौ + उक:

घ. बालकौ + आगतौ

7.4.3 गुण सन्धि (अ, ए, ओ)

यदि अ वर्ण के बाद अच् हो तो पूर्व (पहले) और पर (बाद वाले) के (अ वर्ण और उस अच् के) स्थान में एक गुण आदेश होता है। अ, ए, तथा ओ को गुण कहते हैं।

इस नियम को पाणिनि ने निम्नलिखित सूत्र के माध्यम से कहा है -

सूत्र- आद् गुण:। 6.1.87

अवर्णादचि परे पूर्वपरयोरेको गुण आदेश: स्यात्। उपेन्द्र:। गंगोदकम्।

अर्थात् यदि 'अ' से अच् (स्वर वर्ण) आगे हो तो पहले और आगे वाले वर्णों (पहले तथा बाद वाले, दोनों वर्णों) के स्थान में गुण आदेश हो। यहाँ 'गुण' एक तकनीकी शब्द है। गुण से अ, ए तथा ओ वर्णों का बोध होता है। उससे यह ज्ञात होता है कि जब भी गुण आदेश हो तो अ, ए अथवा ओ रूप में हो। इसको उदाहरण के माध्यम से ठीक प्रकार से जाना जा सकता है।

उपेन्द्र: - उप + इन्द्र: - यहाँ 'प्' के आगे वर्तमान 'अ' है जिसके आगे इन्द्र का आदि वर्ण 'इ' (अच् – स्वर) है। इस स्थिति में पूर्व में पूर्व वर्ण 'अ' तथा बाद वाला वर्ण 'इ' – दोनों के स्थान में 'आद् गुण:' सूत्र से गुण एकादेश प्राप्त है। गुण एक आदेश से तात्पर्य है अ, ए अथवा ओ के रूप में आदेश। इनमें ए का उच्चारण स्थान कण्ठतालु है – ऐसा आप वर्णों के उच्चारण स्थान के माध्यम से भी जानते हैं। 'अ' का उच्चारण स्थान कण्ठ तथा 'इ' का उच्चारण स्थान तालु है। इस प्रकार जो उच्चारण स्थान 'अ' और 'इ' का है वही 'ए' का भी है। जैसा कि आप यण् सन्धि में जान आये हैं कि 'स्थानेऽन्तरतम:' सूत्र से आदेश सदृशतम का होता है। यहाँ 'अ' तथा 'इ' का उच्चारण स्थान की दृष्टि से सदृशतम 'ए' है। अत: उ प् अ + इन्द्र: में अ + इ का 'ए' गुण आदेश

होने पर 'उ प् ए न्द्र:' ऐसा रूप हुआ। सबको मिलाने पर 'उपेन्द्र:' रूप सिद्ध हुआ।

गंगोदकम् – गंगा + उदकम् – यहाँ दूसरे 'ग्' के बाद आने वाले 'आ' के बाद 'उ' (उदकम् का 'उ' वर्ण) है। 'आद् गुण:' सूत्र से 'आ' एवं 'उ' – इन दोनों वर्णों के स्थान पर एकादेश प्राप्त है। स्थानेऽन्तरतम:' सूत्र से आदेश सदृशतम होता है। यहाँ 'अ' का कण्ठ तथा 'उ' का उच्चारण स्थान कण्ठोष्ठ का सदृशतम है। अत: 'आ + उ' को गुण एकादेश 'ओ' होकर 'गंग् ओ दकम्' – यह रूप बना। सबको मिलाने पर 'गंगोदकम्' रूप सिद्ध हुआ।

कृष्णर्द्धि: - कृष्ण + ऋद्धि: - यहाँ 'ण्' के बाद 'अ' है तथा उसके आगे ऋ अच् (स्वर वर्ण) है। 'आद् गुण:' सूत्र से 'अ' एवं 'ऋ' – इन दोंनों वर्णों के स्थान में गुण एकादेश प्राप्त है। अत: 'अ' एवं 'ऋ' – इन दोनों के स्थान पर गुण एकादेश 'अ' हुआ। किन्तु यहाँ यह ज्ञातव्य है कि गुण एकादेश 'अ' के साथ हमेशा 'र्' का प्रयोग होता है, यदि आगे ऋ हो। फलत: कृष्ण् अर् द्धि: - यह रूप बना। सभी को मिलाने पर 'कृष्णर्द्धि:' रूप सिद्ध हुआ।

तवल्कार: - तव + लृकार: - यहाँ 'व्' के बाद 'अ' है तथा उसके आगे 'लृ' अच् (स्वर वर्ण) है। 'आद् गुण:' सूत्र से 'अ' एवं 'लृ' – इन दोनों वर्णों के स्थान में गुण एकादेश 'अ' उपस्थित होता है क्योंकि 'अ' के आगे 'लृ' है। इस प्रकार 'तव् अल् कार:' यह रूप बना। सभी को मिलाने से 'तवल्कार:' रूप सिद्ध हुआ। उपर्युक्त प्रक्रिया के अनुसार अन्य उदाहरण भी साध्य होंगे।

अभ्यास प्रश्न 3

निम्नलिखित में सन्धि – विच्छेद किजिये -

(क) द्रव्यर्द्धि:

(ख) सप्तर्षय:

(ग) ग्रीष्मर्तु:

(घ) महर्षि:

(ङ.) ममल्कार:

(च) महोर्मि:

(छ) एकोनविंशति:

(ज) महोत्सव:

(झ) सूर्योदय:

(ट) महेश:

(ठ) महेन्द्र:

(ड) गणेश:

(ढ) देवेन्द्र:

(ण) रमेश:

(त) महोदय:

(थ) चन्द्रोदय:

(द) देवर्षि:

(ध) वर्षर्तु:

7.4.4 दीर्घ सन्धि

नियम – ह्रस्व या दीर्घ अ, इ, उ, ऋ के बाद यदि क्रमशः ह्रस्व या दीर्घ अ, इ, उ, ऋ आये तो दोनों मिलकर दीर्घ (क्रमशः आ, ई, ऊ, ॠ) हो जाते हैं।

यहॉं दीर्घ सन्धि के 'दीर्घ' नामकरण का तात्पर्य है दीर्घ (आ, ई, ऊ, ॠ) होना। पाणिनि ने इस तथ्य को निम्नलिखित सूत्र से कहा है -

सूत्र - अक: सवर्णे दीर्घ: । 6.1.101

अक: सवर्णेऽचि परे पूर्वपरयोदीर्घ एकादेश: स्यात्। दैत्यारि:। श्रीश:। विष्णूदय:। होतॄकार:।

अर्थात् अक् से सवर्ण अच् (स्वर वर्ण) परे रहने पर पूर्व पर के स्थान में दीर्घ एकादेश हो। तात्पर्य यह है कि अक् प्रत्याहार के अन्तर्गत अ, इ, उ, ऋ, लृ वर्ण आते हैं। इनमें से किसी एक वर्ण के बाद यदि उसी का सवर्ण स्वर वर्ण (यथा अ/आ के बाद अ/आ) आये तो दोनों वर्णों के स्थान में एक दीर्घ आदेश होता है। इन वर्णों में 'लृ' पद यह नियम प्रयुक्त नहीं होगा, क्योंकि उसका दीर्घ नहीं होता।

उदाहरण – दैत्यारि: - दैत्य + अरि: - इस स्थिति में 'य.' के बाद आने वाले 'अ' के बाद 'अरि:' का आदि वर्ण 'अ' सवर्ण अच् (स्वर वर्ण) है। अत: अक: सवर्णे दीर्घ:' सूत्र से दोनों के स्थान में सदृशतम आदेश दीर्घ 'आ' हुआ। फलत: 'दैत्य आ रि:' यह रूप बना। सभी को मिलाने पर 'दैत्यारि:' रूप सिद्ध हुआ।

श्रीश: - श्री + ईश: - यहॉं 'श्र्' के बाद आने वाले 'ई' के बाद सवर्ण (अच्) ईश:' का आदि 'ई' है। अत: 'अक: सवर्णे दीर्घ:' सूत्र से दोनों 'ई + ई' के स्थान में दीर्घ एक 'ई' आदेश हुआ। फलत: 'श्र् ई श:' यह रूप बना। सभी को मिलाने पर 'श्रीश:' रूप निष्पन्न हुआ। इसी

प्रकार विष्णु + उदय: - विष्णूदय: एवं होतृ + ऋकार: - होतृकार: को जानना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न 4-

1- निम्नलिखित में सन्धि कीजिये -

(क) कमल + आकर:

(ख) श्रद्धा + अस्ति

(ग) विद्या + आलय:

(घ) मुनि + इन्द्र:

(ड.) सती + ईश:

(च) भानु + उदय:

(छ) वधू + उत्सव:

(ज) नेतृ + ऋभुक्षा

(झ) पक्तृ + ऋजीषम्

2- निम्नलिखित में सन्धि – विच्छेद कीजिये -

(क) वधूरीकृतम्

(ख) तरूर्ध्वम्

(ग) गिरीश:

(घ) पितृणम्

(ड.) पितृणम्

(च) लक्ष्मीश्वर:

(छ) कवीश्वर:

(ज) विद्याभ्यास:

(झ) परमार्थ:

7.5 वृद्धि सन्धि (आ, ऐ, औ)

अ या आ के बाद एच् ए, ओ, ऐ, औ रहने पर पहले और बाद वृद्धि सन्धि का नामकरण उपर्युक्त 'आ, ऐ, औ' के आधार पर हुआ है। क्योंकि ये वर्ण वृद्धि संज्ञक हैं, अत: इनसे सम्बद्ध सन्धि वृद्धि सन्धि के नाम से जानी जाती है।

पाणिनि ने वृद्धि सन्धि का निम्नलिखित सूत्र से विधान किया है -

सूत्र- वृद्धिरेचि। 6.1.88

आदेचि परे वृद्धिरेकादेश: स्यात्। कृष्णैकत्वम्। गंगौघ:। देवैश्वर्यम्। कृष्णौत्कण्ठ्यम्।

अर्थात् अवर्ण ('अ' या 'आ') से एच् (ए, ओ, ऐ, औ) परे हो तो पूर्व पर के स्थान में वृद्धि एक आदेश हो। इसे उदाहरणों के माध्यम से भलीभाँति समझा जा सकता है -

कृष्णैकत्वम् – कृष्ण + एकत्वम् – इस स्थिति में 'ण्' के बाद आने वाले 'अ' के आगे 'एकत्वम्' का आदि वर्ण 'ए' एच् के अन्तर्गत आता है। अत: 'अ' के आगे 'ए' के होने से 'वृद्धिरेचि' सूत्र से दोनों वर्णों का एक सदृशतम आदेश 'ऐ' हुआ। फलत: 'कृष्ण् ऐ कत्वम्' – यह रूप बना। सभी को मिलाने पर 'कृष्णैकत्वम्' रूप सिद्ध हुआ।

गंगौघ: - गंगा + ओघ: - यहाँ दूसरे 'ग्' के बाद आने वाले 'आ' के आगे 'ओघ:' का आदि वर्ण 'ओ' है जो एच् प्रत्याहार के अर्न्तगत आता है। अत: दोनों वर्ण 'आ + ओ' पूर्वोक्त सूत्र से 'औ' वृद्धि एक आदेश हुआ। फलत: 'गंग् औ घ:' यह रूप बना। सभी को मिलाने पर 'गंगौघ:' रूप सिद्ध हुआ। इसी प्रकार 'देव + ऐश्वर्यम् – देवैश्वर्यम्' तथा 'कृष्ण + औत्कण्ठ्यम् – कृष्णौत्कण्ठ्यम्' को भी जानना चाहिए।

वृद्धि सन्धि के विषय में एक अन्य महत्त्वपूर्ण विधान को जानना आवश्यक है। पाणिनि के अनुसार – यदि अवर्णान्त उपसर्ग ('अ' या 'आ' जिस उपसर्ग के अन्त में हो) के बाद ऋ है जिस धातु के आदि में हो तो पूर्व पर (दोनों वर्णों) के स्थान में वृद्धि एक आदेश हो –

सूत्र- उपसर्गादृति धातौ। 6.1.91

अवर्णान्तादुपसर्गाद् ऋकारादौ धातौ परे वृद्धिरेकादेश: स्यात्। प्रार्च्छति

उदाहरण -प्राच्छति – प्र + ऋच्छति – यहाँ 'प्र' उपसर्ग के अन्त में 'अ' (प्र्+अ) है। उसके आगे 'ऋच्छति' क्रिया में 'ऋच्छ' धातु का आदि वर्ण 'ऋ' है। अत: 'अ' एवं 'ऋ' – उन दोनों वर्णों के स्थान में वृद्धि एक आदेश 'आ' हुआ। 'आ' सदैव 'र्' के साथ उपस्थित होता है। अत: 'प्र् आर् च्छति' – यह रूप बना। सभी को मिलाने पर 'प्रार्च्छति' रूप सिद्ध हुआ।

अभ्यास प्रश्न 5-

1- निम्नलिखित में सन्धि कीजिये -

(क) पंच + एते

(ख) जन + एकता

(ग) दीर्घ + एरण्ड:

(घ) मा + एवम्

(ड.) एक + एकम्

(च) परम + औषधि:

(छ) दिव्य + औषधम्

(ज) महा + औत्सुक्यम्

(झ) प्र + ऋच्छति

(ट) प्र + ऋणोति

2- निम्नलिखित में सन्धि – विच्छेद कीजिये -

(क) दर्शनौत्सुक्यम्

(ख) स्थूलैण:

(ग) सुखौपयिकम्

(घ) तस्यौदार्यम्

(ड.) महैन:

7.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि दो वर्णो के मेल से होने वाले परिवर्तन को सन्धि कहते हैं। सन्धि के तीन भेद हैं – स्वर (अच्) सन्धि, व्यंजन (हल्) सन्धि तथा विसर्ग सन्धि।दो स्वर वर्णो के मेल से होने वाले परिवर्तन को स्वर सन्धि कहते हैं।

स्वर सन्धि के प्रमुख भेदों में यण्, अयादि, गुण, दीर्घ एवं वृद्धि सन्धि हैं। यण् सन्धि में ह्रस्व या दीर्घ इ, उ, ऋ, लृ के बाद किसी असवर्ण स्वर के आने पर इ का य्, उ का व्, ऋ का र् तथा लृ का ल् हो जाता अयादि सन्धि में ए, ओ, ऐ, औ के बाद कोई स्वर वर्ण हो तो ए का अय्, ओ का अव्, ऐ का आय् तथा औ का आव् हो जाता है। गुण सन्धि में यदि अवर्ण (अ या आ) के आगे इवर्ण (इ या ई) हो तो दोनों मिलकर ए, उवर्ण (उ या ऊ) हो तो दोनों मिलकर ओ, ऋ हो तो दोनों मिलकर अर् तथा लृ हो तो दोनों मिलकर अल् हो जाते हैं। दीर्घ सन्धि में ह्रस्व या दीर्घ अ, इ, उ, ऋ के बाद यदि क्रमश: ह्रस्व या दीर्घ अ, इ, उ, ऋ आये तो दोनों मिलकर दीर्घ (क्रमश: आ,

ई, ऊ, ऋ) हो जाते हैं। वृद्धि सन्धि में अवर्ण (अ या आ) के बाद यदि 'ए' अथवा 'ऐ' आये तो दोनों मिलकर 'ऐ' तथा 'ओ' अथवा 'औ' आये तो दोनों मिलकर 'औ' हो जाते हैं। वृद्धि रूप में जहाँ भी 'आ' हो तो वह 'र्' के साथ ही उपस्थित हो। वृद्धि सन्धि में यदि अवर्णान्त उपसर्ग के बाद ऋकारादि धातु हो तो दोनों वर्णों के स्थान में वृद्धि एकादेश 'आर्' हो जाता है।

7.7 पारिभाषिक शब्दावली

1.**आदेश** – संस्कृत व्याकरण में 'आदेश' एक तकनीकी शब्द है। आदेश शब्द के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि जो किसी स्थान में पहले से रहने वाले वर्ण को हटाकर स्वयं उपस्थित होता है वह आदेश कहलाता है। जैसे – सुधी + उपास्य: में 'ई' को हटाकर 'य्' उपस्थित होता है। आदेश को शत्रु के समान माना गया है – शत्रुवदादेश:, क्योंकि वह पहले से उपस्थित वर्ण को हटाकर वहाँ स्वयं स्थित हो जाता है।

2.**स्थानी** – स्थानी शब्द भी पारिभाषिक है। इसके विषय में कहा गया है कि जिसके स्थान में अर्थात् जिस वर्ण के ऊपर आदेश होता है वह स्थानी कहलाता है। जैसे – 'सुधी + उपास्य:' में 'ई' वर्ण के स्थान में 'य्' का आदेश होता है। अत: 'ई' स्थानी है।

3. **वार्तिक – उक्तानुक्तदुरूक्तानां चिन्ता यत्र प्रवर्तते।**

वं ग्रन्थं वार्तिकं प्राहुर्वार्तिकज्ञा विचक्षणा:।।

अर्थात उक्त (पहले कहे गये), अनुक्त (नहीं कहे गये) तथा दुरूक्त (त्रुटिपूर्ण रूप से कहे गये) विषय पर जहाँ विचार किया जाता है, उसे विद्वान लोग वार्तिक कहते हैं। वैयाकरण कात्यायन का वार्तिक, जो कि पाणिनि के द्वारा रचित अष्टाध्यायी के बाद लिखा गया, संस्कृत व्याकरण का प्रसिद्ध ग्रंन्थ है।

4.उपसर्ग – प्र आदि उपसर्गों की क्रिया के योग में उपसर्ग संज्ञा होती है। प्र आदि उपसर्गों की संख्या बाईस है – प्र, परा, अप्, सम्, अनु, अव्, निस्, निर्, दुस्, दुर्, वि, आङ्, नि, अधि, अपि, अति, सु, उत्, अभि, प्रति, परि, उप।

5.धातु – संस्कृत व्याकरण में क्रियावाची भू आदि की धातु संज्ञा होती है। भू आदि की गणना पाणिनि के द्वारा रचित 'धातुपाठ' नामक ग्रंथ में की गयी है। क्रियावाची भू आदि कहने से पृथ्वीवाचक भू आदि को इससे पृथक् समझना चाहिए।

7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 के उत्तर -

1. (i) (क) अभ्युदय: (ख) यद्यपि

(ग) इत्यादि: (घ) प्रत्युपकार:

		(ड.) न्यून:	(च)	प्रत्येकम्
		(छ) देव्यनुग्रह:	(ज)	नद्येव
		(झ) यादृश्युक्ति:		
	(ii)	(क) अन्वय:	(ख)	स्वागतम्
		(ग) अन्वेषणम्	(घ)	वध्वागमनम्
	(iii)	(क) पित्रिच्छा	(ख)	मात्राज्ञा
	(iv)	(क) लाकृति:		
2.	(क) इति + उक्त्वा		(ख)	अति + आचार:
	(ग) गुरू + आदेश:		(घ)	पितृ + उपदेश:
	(ड.) मातृ + अनुमति:		(च)	मातृ + उक्तम्
	(छ) वधू + अलंकार:		(ज)	गौरी + आयाति
	(झ) वारि + अस्ति		(ट)	दधि + आनय

अभ्यास प्रश्न 2 के उत्तर

1.	i.	(क)शयनम्	(ख)	नयनम्
		(ग) चयनम्	(घ)	शयान:
		(ड.) शयित:		
	Ii.	(क)पवन:	(ख)	लवन:
		(ग) पवित्रम्	(घ)	भवनम्
		(ड.) भानवे		
	iii.	(क) गायन:	(ख)	परिचायक:
	iv.	(क) भावक:	(ख)	नाविक:
		(ग) भावुक:	(घ)	बालकावागतौ

अभ्यास प्रश्न 3 के उत्तर

(क) द्रव्य + ऋद्धि: (ख) सप्त + ऋषय:

(ग) ग्रीष्म + ऋतु:	(घ) महा + ऋषि:
(ड.) मम + लृकार:	(च) महा + ऊर्मि:
(छ) एक + ऊनविंशति:	(ज) महा + उत्सव:
(झ) सूर्य + उदय:	(´´) महा + ईश:
(ट) महा + इन्द्र:	(ठ) गण + ईश:
(ड) देव + इन्द्र:	(ढ) रमा + ईश:
(ण) महा + उदय:	(त) चन्द्र + उदय:
(थ) देव + ऋषि:	(द) वर्षा + ऋतु:

अभ्यास प्रश्न 4 के उत्तर

(क) कमलाकर:	(ख) श्रद्धास्ति
(ग) विद्यालय:	(घ) मुनीन्द्र:
(ड.) सतीश:	(च) भानूदय:
(छ) वधूत्सव:	(ज) नेतृभुक्षा
(झ) पक्तृजीषम्	

2.

(क) वधू + उररीकृतम्	(ख) तरू + ऊर्ध्वम्
(ग) गिरि + ईश:	(घ) पितृ + ऋणम्
(ड.) सु + उक्ति:	(च) लक्ष्मी + ईश्वर:
(छ) कवि + ईश्वर:	(ज) विद्या + अभ्यास:
(झ) परम + अर्थ:	

अभ्यास प्रश्न 5 के उत्तर

(क) पंचैते:	(ख) जनैकता
(ग) दीर्घैरण्ड:	(घ) मैवम्:
(ड.) एकैकम्:	(च) परमौषधि:
(छ) दिव्यौषधम्:	(ज) महौत्सुक्यम्

(झ) उपार्च्छति ( ) प्राणौति

2. (क) दर्शन + औत्सुक्यम् (ख) स्थूल + एण:

(ग) सुख + औपयिकम्: (घ) तस्य + औदार्यम्

(ङ.) महा + एन:

7.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वरदराजाचार्य, वरदराज, लघुसिद्धान्त कौमुदी, व्याख्याकार एवं सम्पादक – श्री धरानन्द शास्त्री, (2000) मोतीलाल बनारसी, दिल्ली

2.वरदराज, लघुसिद्धान्त कौमुदी, व्याख्याकार – महेश सिंह कुशवाहा, (1994) चैखम्बा विद्याभवन, वाराणसी

7.10 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. मिश्र, कमलाकान्त, व्याकरणसौरभम्, (2002) एन0सी0ई0आर0टी0, नई दिल्ली।

2. शास्त्री, चक्रधर , नौटियाल 'हंस'बृहद् अनुवाद चन्द्रिका, (1984) मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

3. शास्त्री, नेमिचन्द्र, स्नातक संस्कृत व्याकरण, (संवत् 2032), ज्ञानदा प्रकाशन, पटना

7.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. निम्नलिखित विषयों पर टिप्पणी लिखें -

(क) यण् सन्धि

(ख) अयादि सन्धि

(ग) गुण सन्धि

(घ) दीर्घ सन्धि

(ङ.) वृद्धि सन्धि

2. स्वर सन्धि पर एक निबंध लिखें

इकाई:8. प्रकृतिभाव विधायक सूत्र-उदाहरण एवं व्याख्या

8.1 प्रस्तावना

नीतिशास्त्र, व्याकरण एवं अनुवाद से सम्बन्धित यह आठवीं इकाई है। इससे पहले की इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकेंगे कि स्वर सन्धि क्या है ? इसके कितने भेद हैं ? यण्,अयादि,गुण,दीर्घ तथा वृद्धि सन्धि की सोदाहरण व्याख्या किस प्रकार की जा सकती है ? संस्कृत एवं अन्य भाषा - साहित्य में स्वर सन्धि की उपयोगिता क्या है ?

स्वर सन्धि का परिचय प्राप्त करने के पश्चात् आप प्रकृति भाव का विधिवत् अध्ययन कर पाएंगे। इस इकाई में मुख्य रूप से प्रकृतिभाव विधायक सूत्रों की उदाहरण सहित व्याख्या प्रस्तुत की जाएगी।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप प्रकृतिभाव विधायक सूत्रों को उदाहरण के साथ समझा पाएंगे।

8.2 उद्देश्य

1. प्रकृतिभाव क्या है – इसके विषय में समझा पाएंगे।
2. लघुसिद्धान्त कौमुदी मे उल्लिखित प्रकृतिभाव विधायक सूत्रों की उदाहरण सहित व्याख्या कर पाएंगे।
3. प्रकृतिभाव की प्रक्रिया को सम्यक रूप से जानकर अपनी भाषा एवं लेखन में उसका समुचित प्रयोग कर पाएंगे।
4. प्रकृतिभाव विधायक सूत्रों का व्याकरण के अन्य प्रकरणों में उपयोग कर पाएंगे।
5. प्रकृति भाव विधायक सूत्रों का ठीक प्रकार से अध्ययन कर हिन्दी आदि अन्य भाषाओं में इसके स्वरूप को भलीभॉति जान पाएंगें।
6. अन्य भाषाओं में प्रकृति भाव की सरंचना उपलब्ध है या नहीं इसका निर्णय कर पाएंगे।
7. आधुनिक भाषा विज्ञान में इसका सम्यक् प्रकार से उपयोग कर पाएंगे।
8. संस्कृत में निहित किसी भी शास्त्र के अध्ययन ,अध्यापन , अर्थनिर्धारण , आदि में इसका उपयोग कर पाएंगें।
9. प्रकृति भाव संस्कृत भाषा एवं व्याकरण की एक नैसर्गिक देन है- इसको स्थापित कर पाएंगे।

8.3 प्रकृतिभाव विधायक सूत्र – अर्थ एवं प्रतिपाद्य

स्वर सन्धि के अध्ययन के क्रम मे आपने देखा कि संस्कृत के प्रत्येक शब्द के अन्त मे स्वर, व्यंजन, अनुस्वार अथवा विसर्ग अवश्य रहता है तथा उस शब्द के आगे जब किसी दूसरे शब्द के होने से उनका मेल होता है तब पूर्व शब्द के अन्तवाले स्वर, व्यंजन आदि मे कुछ परिवर्तन होता है, जिसे सन्धि कहते है। परन्तु कुछ परिस्थितियॉ ऐसी होती है या दूसरे शब्दों में कहें तो कुछ अपवाद स्वरूप ऐसे उदाहरण उपलब्ध होते हैं जहॉ सन्धि के नियम क्रियान्वित नहीं हो पाते है। तात्पर्य यह है कि वहॉ सन्धि के नियम परिस्थिति रहने पर भी वर्णो के मध्य किसी प्रकार

का परिवर्तन या विकार सम्भव नहीं हो पाता। वर्ण यथावत् उपस्थित हो जाते हैं। इसी स्वरूप को प्रकृतिभाव के नाम से जाना जाता है। अन्य शब्दों में वर्णो का अपनी मूल अवस्था में रह जाना, विकारभाव को प्राप्त न होना प्रकृतिभाव है। उदाहरण स्वरूप (हरि एतौ) यहॉ स्वर सन्धि के नियमो के अनुसार हरी के अन्तिम वर्ण (ई) तथा (एतौ) के प्रथम वर्ण ए के मध्य सन्धि सम्भव है अर्थात् विकार हो सकता था, परन्तु ऐसा नही होता। यहॉ किसी भी प्रकार का विकार नही होते हुए ये अपने मूल रूप में ही उपस्थित रहते हैं। अतः यही उसका प्रकृतिभाव रूप है। पाणिनि से आप जान पाएंगे कि किन-किन परिस्थितियों में प्रकृतिभाव सम्भव है। यहॉ मुख्य रूप से आप प्रकृतिभाव सम्बन्धि चार सूत्रों का अध्ययन कर पाएंगे।

8.4 प्रकृतिभाव विधायक सूत्र

लघुसिद्धान्त कौमुदी में प्रकृतिभाव के विधायक चार सूत्र उपलब्ध होते हैं। आप यहॉ इन चार सूत्रों की सोदाहरण व्याख्या जानेंगे। ये चार सूत्र है - 1. सर्वत्र विभाषा गोः प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्, इकोऽस्वर्णे शकल्यस्य हस्वश्च तथा ऋत्यकः।

8.4.1 सर्वत्र विभाषा गोः 6.1.122

लेके वेदे चैङन्तस्य गोरति वा प्रकृतिभावःपदान्ते।गो अग्रम्. गोऽग्रम्। एङन्तस्य किम् - चित्रग्वग्रम्। पदान्ते किम् ? - गोः

अर्थ - लौकिक संस्कृत भाषा - साहित्य अथवा वैदिक संस्कृत भाषा -साहित्य में एङन्त (गो) शब्द के आगे (अकार) हो तो विकल्प से प्रकृतिभाव होता है । प्रकृतिभाव से तात्पर्य है कि वे वर्ण यथावत् रहेंगे वहॉ कोई विकार या परिवर्तन नहीं होगा। उदाहरण के लिए गो अग्रम् (गाय का अगला हिस्सा अथवा गाय के सामने) में गो के आगे अग्रम् का पहला वर्ण (अकार) है उपर्युक्त नियम के अनुसार गो के आगे अकार के रहने से यहॉ कोई विकार या परिवर्तन नही होता अर्थात् प्रकृतिभाव हो जाता है, जिससे गो अग्रम ऐसा ही रूप उपलब्ध होता है। यही प्रकृतिभाव की अवस्था है। क्योंकि यह नियम विकल्प से काम करता है, अतः इसका दूसरा रूप भी उपलब्ध होता है जहॉ विकार या परिवर्तन होता हुआ 'एङः पदान्तादति,'सूत्रों से 'गो अग्रम् = 'गोऽग्रम्' रूप निष्पन्न करता है। यह पूर्व रूप सन्धि का उदाहरण है। यहॉ यह ध्यान देने योग्य है कि नियम के अर्न्तगत 'एङन्त' 'गो' शब्द के रहने पर ही प्रकृतिभाव हो- ऐसा कहा गया है। तात्पर्य यह हैकि एड.न्त अर्थात् 'एङ्' हो अन्त में जिस 'गो' शब्द के वहीं प्रकृतिभाव हो। ' एङ्.' प्रत्याहार है और इसके अर्न्तगत ' ए ' ओ ' दो वर्ण आते है। इस प्रकार यदि ' गो ' शब्द के अन्त में ' ए ' या ' ओ हो तो तभी ' अकार ' के परे रहत प्रकृतिभाव होता है। यदि ऐसा न हो तो फिर प्रकृतिभाव भी सम्भव नही है। जैसे - ' चित्रग्वग्रम् ' मे ' चित्रगु अग्रम् ' है। ' चित्रगु ' में ' गु ' शब्द गो का ही रूप है परन्तु वह एङ.न्त नही है। अर्थात् ' ए ' अथवा ' ओ ' युक्त नहीं है अपितु ' ऽ ' से युक्त है। अतः उपर्युक्त नियम यहॉ काम नही करता , क्योकि ' ए ' या ओ वर्ण अन्त वाले गो (ओ इसके अन्त मे है) शब्द के आगे ' अकार 'रहने पर प्रकृतिभाव होगा। ' चित्रगु अग्रम् ' मे प्रकृतिभाव न होकर 'इको यणचि' से यण् सन्धि होती है तथा ' चित्रग्वग्रम् रूप बनता है।

आप यहॉ एक अन्य उदाहरण देखें। ' गोः - मे ' गो अः ' है। यहॉ भी उपर्युक्त नियम के अनुसार प्रकृतिभाव होना चाहिए, क्योकि एङ.न्तः ' गो ' के आगे ' अकार ' है । अतः प्रकृतिभाव की स्थिति उपस्थित होती है । परन्तु ऐसा नहीं होता क्योकि यहॉ ' गो ' पद नहीं है, अपितु प्रातिपदिक हैं । पद वह होता है जिस के अन्त मे सु आदि अथवा तिप् आदि प्रत्यय हो । यहॉ उपस्थिति ' गो ' पद में ' ओ ' पदान्त नहीं है, जबकि नियम के अनुसार पदान्त ' ओ ' रहने पर ही उसके आगे ' अ ' के आने पर प्रकृतिभाव होता है। ' गो अः ' मे ' गो ' प्रातिपदक है, पदान्त तो 'अ ' के बाद आनेवाला विसर्ग हैं इस प्रकार पदान्त ' ओ ' नही होने के कारण ' सर्वत्र विभाषा गोः की प्रकृति यहॉ नही होगी, क्योकि ' गो 'एङन्त होने पर भी पदान्त नहीं है। परन्तु नियम की प्रकृति पदान्त ' ओ ' के रहने पर ही सम्भव है । निष्कर्षतः 'गो $अः ' में 'ङसिङसोश्च ' सूत्र से पूर्वरूप सन्धि होती है तथा ' अ ' का ' ओ ' मे मिल जाने से ' गोः' शब्द ही शेष रहता है।

8.4.2 प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् 6.1.125

एतेऽचि प्रकृत्या स्युः आगच्छ कृष्ण ऽऽ अत्र गौश्चरति ।

अर्थ - प्लुत संज्ञक और प्रगृह्य संज्ञक को अच् परे रहने पर प्रकृतिभाव होता है ,सामान्य रूप से तीन मात्राओं से युक्त स्वर प्लुत होता है। इस विषय मे कहा गया है ।

एकमात्रा भवेद् ह्रस्वो द्विमात्रा दीर्घ उच्यते ।

त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यंजन चार्धमात्रिकम् ।।

अर्थात् ह्रस्व स्वर में एक मात्रा, दीर्घ स्वर में दो मात्रा, प्लुत स्वर में तीन मात्रा तथा व्यंजन में आधी मात्रा होती है। सामान्य रूप से चुटकी बजाने में पलक गिरने में जितना समय लगता है उसे मात्रा के रूप में जाना जाता है । इसके अतिरिक्त जिसको दूर से बुलाया जाता है उसके ' टि 'की भी विकल्प से प्लुत संज्ञा होती है। उदाहरण के लिए 'आगच्छ कृष्ण 3 अत्र गौश्चरति ' इस वाक्य मे कृष्ण को दूर से बुलाया जा रहा है अतः ' कृष्ण ' में ' टि ' की प्लुत संज्ञा होगी । ' टि ' की व्याख्या ' शब्दावली 'शीर्षक में देखें। यहॉ कृष्ण में ' ण् ' से पर ' अकार ' की प्लुत संज्ञा होती है। ऐसे प्लुत संज्ञक वर्ण से परे यदि ' अच् ' (कोई भी स्वर वर्ण हो) हो तो वहॉ प्रकृतिभाव होता है। प्रस्तुत उदाहरण आगच्छ कृष्ण 3 अत्र गौश्चरति मे ' कृष्ण ' में 'णकार ' के बाद आने वाला अकार प्लुत संज्ञक है । उसके परे ' अत्र ' का आदि वर्ण ' अ ' अच् है। अतः प्लुत प्रगृह्या अचि नित्यम् सूत्र से प्रकृतभाव होता है। प्रकृतिभाव होने से यहॉ किसी प्रकर का विकार या परिवर्तन नही होता है। यद्यपि ' ण् ' के परे आनेवाला ' अकार ' और 'अत्र' के आदि वर्ण अकार के मध्य अकः सवर्णे दीर्घः से दीर्घसन्धि सम्भव थी, किन्तु प्रकृतिभाव होने के कारण ऐसा नही हो पाया ।

उपर्युक्त सूत्र में दूसरा नियम प्रगृह्य संज्ञक पद से सम्बद्व है। अर्थात् यदि प्रगृह्य संज्ञक से परे अच् हो तो प्रकृतिभाव होता हैं सर्वप्रथम आप प्रगृह्य संज्ञक पदों को जानें । इसके लिए लघुसिद्धान्त

कौमुदी में निम्नलिखित सूत्र दिये गये है-

ईदूदेद्विवचनं प्रगृह्यम् ।.।.।। ईदूदेदन्तं द्विवचनं प्रगृह्यसंज्ञं स्यात् । हरी एतौ । विष्णू

इमौ । गंगे अमू ।

अर्थ - ईकारान्त, ऊकारान्त और एकारान्त द्विवचन की प्रगृह्य संज्ञा होती है। यहॉ ' हरी ' ईकारान्त है, क्योकि उसके अन्त में ईकार है। ' विष्णु ' ऊकारान्त है , क्योकि उसके अन्त में ऊकार है। ' गंगे ' एकारान्त है, क्योकि उसके अन्त में एकार है।उसके अतिरिक्त तीनों हरी, विष्णु तथा गंगे , द्विवचन भी हैं । अतः इन तीनो की उपर्युक्त सूत्र से प्रगृह्य संज्ञा होती है। प्रगृह्य संज्ञक होने के कारण इनके परे अच् होने पर अर्थात् 'हरी ' के ईकार से परे ' एतौ ' का आदि वर्ण इकार अच् रहने पर तथा गंगे के एकार के परे ' अमू ' का आदि वर्ण अकार अच् परे रहने पर 'प्लुत प्रगृह्या अचि नित्यम् ' से तीनों उदाहरण में प्रकृति भाव होता है। अतः बिना विकार या परिवर्तन के केवल मूल स्वरूप में वे उपलब्ध होते हैं।

2- अदसो मात् 1.1.12

अस्मात् परावीदूतौ प्रगृह्यौ स्तः। अमी ईशाः। रामकृष्णावमू आसाते ।

अर्थ -मकारान्त अदस् शब्द से परे पर ईकार और ऊकार की प्रगृह्य संज्ञा होती है। उदाहरण के लिए

' अमी ईशाः ' - यहॉ ' अमी ' पद मकारान्त 'अदस् ' है । ' अदस् ' का प्रथमा विभक्ति बहुवचन में ' अमी ' रूप बनता है । ऐसे मकारान्त अदस् अर्थात् अमी का अन्तिम वर्ण ' ईकार ' है, जिसकी प्रगृह्य संज्ञा होती है । इसी प्रकार रामकृष्णौ अमू = रामकृष्णावमू ' में मकारान्त अदस् सम्बन्धी ' अम् ' मे ' ऊकार ' की प्रगृह्य संज्ञा होती है । अतः ' अमी ईशाः ' में ' अमी ' का ईकार तथा ईशाः में आदि ईकार इन दोनो में ' प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम ' से प्रकृतिभाव होता है, क्योकि अमी मे ईकार की प्रगृह्य संज्ञा है तथा उसके परे ' ईशाः 'का आदि वर्ण ईकार अच् है । अतः उपर्युक्त नियम के कारण कोई अन्य सन्धि न होकर प्रकृतिभाव हुआ, इसी प्रकार ' रामकृष्णावमू ' आसाते में अमू का अन्तिम वर्ण ' ऊकार ' है उसकी प्रगृह्य संज्ञा है । उसके परे ' आसाते ' का आदि वर्ण आकार अच् है, अतः प्रकृतिभाव हो गया।

3. निपात एकाजनाङ् 1.1.14

एकोऽज् निपात आङ्. वर्जः प्रगृह्यः स्यात् । इ इन्द्रः । 3 उमेशः ।

अर्थ -आङ् को छोड़कर एक अच् वाले अथवा एक स्वर वाले नियात की प्रगृह्य संज्ञा होती है । निपात के विषय में ' शब्दावली ' विन्दू को देखें। उपर्युक्त उदाहरण में - इ इन्द्रः मे प्रथम 'द् ' एक स्वरवाला है तथा नियात है, अतः उसकी प्रगृह्य संज्ञा हुई। ठीक उसी प्रकार उ उमेश: मे प्रथम ' उ ' एक स्वरवाला है तथा निपात है, अतः उसकी भी प्रगृह्य संज्ञा हुई । ' इ इन्द्र 'में प्रथम ' इ ' के प्रगृह्य संज्ञा होने पर उसके परे अच् ' इ ' (इन्द्र का आदि वर्ण) के होने से दीर्घ प्राप्त था, परन्तु ' प्लुतप्रगृह्याऽनित्यम् ' से प्रकृतभाव हुआ, अर्थात् किसी भी प्रकार का विकार सम्भव न हो पाता। यहॉ यह ध्यान देना आवश्यक है कि ' आङ् ' पर यह नियम कार्य नही करेगा । ' आङ् ' मे ' आ ' शेष रहता है जिसका अर्थ है- ईषत् या अल्प । इस अर्थ वाले ' आ ' की प्रगृह्य संज्ञा नही होती

है, यद्यपि यह भी एक स्वरवाला है। अतः इस पर प्रकृतिभाव का नियम भी क्रियान्वित नही होता। उदाहरण स्वरूप- ' ओष्णम् ' में ' आ $ ऊष्णम् ' है। यहॉ ' आ 'का अर्थ - अल्प है। अतः एक स्वर वाला होने पर भी इसकी प्रगृह्य संज्ञा नहीं होती है। फलतः ' आ ऊष्णम् ' में गुण संधि होकर ' ओष्णम् ' सिद्ध होता है। 'ओष्णम ' में विकार या परिवर्तन हुआ है, प्रकृतिभाव की स्थिति यहॉ नही है। यदि ' आ ' का प्रयोग वाक्य में हो तो वह प्रगृह्य संज्ञक होगा। यथा - ' आ ' एवं नु मन्यसे में 'आ' ' का प्रयोग वाक्य में हुआ है। यहॉ ' आ ' आङ्. वाले ' आ ' से पृथक है, अतः उसकी प्रगृह्य संज्ञा होती है तथा ' आ एवं ' मे ' आ और ए ' मध्य किसी प्रकार का विकार नहीं होता। अपितु ' प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् ' से प्रकृतिभाव हो जाता है। ध्यान रहे कि ' आ ' दो प्रकार के है - ' आङ् ' सम्बन्धि ' आ ' और दूसरा स्वतन्त्र ' आ ' आ. सम्बन्धि ' आ ' की प्रगृह्य संज्ञा नही होती है तथा स्वतंन्त्र ' आ ' की प्रगृह्य संज्ञा होती है। जहॉ प्रगृह्य संज्ञा होगी वहॉ **प्लतप्रगृह्याऽचि नित्यम्** का प्रयोग होगा एवं जहॉ प्रगृह्य संज्ञा नहीं होगी वहॉ सामान्य रूप से सन्धि होगी।

4. ओत् 1.1.15

ओदन्तो निपातः प्रगृह्यः स्यात्। अहो ईशाः

अर्थ- ओदन्त निपात की प्रगृह्य संज्ञा होती है।

ओत् अर्थात् ओ हो जिस निपात के अन्त में उसे ओदन्त निपात कहते हैं। ओदन्त निपात के अर्न्तगत अहो, ओर उताहो आते है। उपर्युक्त उदाहरण ' अहो ईशाः ' में ' अहो ' ओदन्त निपात है तथा इसकी प्रगृह्य संज्ञा है, अतः ' अहो ' के ' ओ ' के अनन्तर अच् (स्वर) ' ईशाः ' का ईकार है। ' प्लुत प्रगृह्या अचि नित्यम् ' से बिना किसी विकार या परिवर्तन के प्रकृतिभाव हो गया।

5. सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे 1.1.16

सम्बुद्धिनिमित्तक ओकारो वा प्रगृह्यो ऽवैदिके इतौ परे। विष्णो इति, विष्ण इति, विष्णविति।

सम्बुद्धिनिमित्तक ओकारो वा प्रगृह्यो ऽवैदिके इतौ परे। विष्णो इति विष्ण इति, विष्णविति।

अर्थ – सम्बुद्धिनिमित्तक ओकार को विकल्प से प्रगृह्य संज्ञक हो अवैदिक ' इति ' शब्द पर में हो तो।

प्रथमा के एक वचन को सम्बोधन में सम्बुद्धि कहते हैं। प्रस्तुत उदाहरण ' विष्णो इति ' में ' विष्णो ' का ओकार सम्बुद्धिनिमित्तक ओकार है, क्योंकि मूल शब्द ' विष्णु ' है इसका 'ह्रस्वस्य गुणः ' इस सूत्र से ' ऊकार ' का सम्बुद्धिनिमित्तक ओकार हो गया। तात्पर्य यह है कि सम्बोधन मे ' विष्णु ' का ' विष्णो 'हो जाता है। ऐसे ' विष्णो 'मे ' ओकार ' के परे ' इति ' शब्द, जो वेद का नहीं है अर्थात् इस प्रसंग को वेद से नहीं लिया गया है, वेद के रहने पर उसकी प्रगृह्य संज्ञा होती है तथा प्लुतप्रगृह्याऽचि नित्यम् ' से प्रकृतिभाव हो जाता है। क्योंकि यहॉ नियम के अनुसार प्रगृह्य संज्ञा विकल्प से होती है अर्थात् एक बार होती है तथा दूसरी बार नहीं होती है, अतः जब ' विष्णो ' के ओकार की प्रगृह्य संज्ञा नही होगी तब ' एचोऽयवायावः ' सूत्र से ' विष्णो ' के ' ओकार ' का अच् 'इ' परे रहते ' अव् ' आदेश होता है। फलतः ' विष्ण् अव् इति ' होगा। सभी

को एक साथ मिला देने पर ' विष्णविति ' दूसरा रूप बनेगा। इस प्रकार यहॉ प्रगृह्य संज्ञा सम्बन्धि सूत्र, उदाहरण एवं उन पर आधारित प्रकृतभाव का विधान - यह प्रकरण समाप्त हुआ।

8.4.3 इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च 6.1.127

पदान्ता इकोऽसवर्णे परे प्रकृत्या स्युर्ह्रस्वश्च वा। चक्रि अत्र। चक्र्यत्र।

अर्थ - पदान्त ' इक् ' को सवर्ण भिन्न ' अच् ' परे रहते विकल्प से प्रकृतिभाव होता है और ह्रस्व भी होता है। इस नियम को आप उदाहरण के माध्यम से ठीक प्रकार से समझ पाएंगे। यथा - ' चक्रि अत्र ' में मूल शब्द ' चक्रि $ अत्र ' है। किन्तु ' चक्रि ' के अन्त में ' ईकार ' इक् है जिसके परे ' अत्र ' का आदि ' अकार ' है जो ' ईकार का सवर्ण नही है। तात्पर्य यह है कि ' ईकार ' और ' अकार ' का उच्चारण स्थान एवं प्रयत्न यह नही है , भिन्न - भिन्न है, अतः असवर्ण होने से उपर्युक्त नियम के द्वारा ' चक्रि ' के दीर्घ ईकार का ह्रस्व इकार हो गया। फलस्वरूप ' चक्रि अत्र ' यह रूप बना। परन्तु इस स्थिति में यहॉ यण् सन्धि प्राप्त है, परन्तु उपर्युक्त नियम से ही प्रकृतिभाव का भी विधान है। अतः ' चक्रि अत्र 'मे कोई परिवर्तन नहीं हुआ तथा प्रकृतिभाव की स्थिति निष्पन्न हुई। लेकिन क्योंकि यहा प्रकृतिभाव और ह्रस्व विकल्प से विहित है, अतः दूसरे पक्ष में ' चक्रि अत्र मे यण् सन्धि होकर चक्रयत्र रूप निष्पन्न हुआ। नियम में पदान्त कहने के कारण (गौरी औ) मे ह्रस्व और प्रकृतिभाव नहीं हुआ।

8.4.4 ऋत्यकः 6.1.128

ऋति परे पदान्ता अकः प्राग्वद् वा। ब्रह्मा ऋषि। ब्रह्मर्षिः पदान्ताः किम् - आर्च्छत्।

अर्थ - ह्रस्व ऋकार (ऋत्) परे रहते ' अक् ' (ह्रस्व या दीर्घ अ,इ,ऋ तथा लृ) के स्थान पर ह्रस्व तथा प्रकृतिभाव हो।

इसे आप उदाहरण के माध्यम से अच्छी प्रकार से समझ सकते हैं। ब्रह्म ऋषिः - इस उदाहरण में ' ब्रह्मा ' का अन्तिम वर्ण ' आ ' है जो अक् प्रत्याहार के अर्न्तगत आता है। उसके परे ऋषि सम्बन्धी ' ऋ ' ह्रस्व ऋकार है। ऐसी स्थिति में उपर्युक्त सूत्र से ' ब्रह्मा के 'आ ' का ह्रस्व 'अ ' होता है। साथ ही प्रकृतिभाव भी हो जाता है। फलतः ' ब्रह्मा ऋषिः यह रूप निश्चित होता है। लेकिन यहॉ ह्रस्व विधान तथा प्रकृतिभाव विकल्प से होता है, अतःदूसरी स्थिति में' ब्रह्मऋषिः ' = ब्रह्मर्षि रूप सिद्ध होता है।

पदान्त कहने से आ ऋच्छत् ' - इस उदाहरण में आ यद्यपि ' अक् ' के अर्न्तगत आता है, परन्तु पदान्त न होने से ' ऋकार ' के परे रहने पर भी ह्रस्व विधान तथा प्रकृतिभाव नही होता। आटश्च सूत्र से वृद्धि होकर आर्च्छत् ' रूप निष्पन्न हुआ।

1. अभ्यास प्रश्न-

1- निम्नलिखित में दो पदों के मध्य होने वाले प्रकृतिभाव को रेखांकित करें -

(क) आगच्छ हरे ऽअत्र क्रीडेम।

(ख) आगच्छ राम ऽअत्र लक्ष्मणः अस्ति।

(ग) आगच्छ सीते इह माता अस्ति।

(घ) बालक अत्र गौश्चरति।

(इ.) राधे ऽअत्र कृष्ण: भोजनं करोति।

2. निम्नलिखित में प्रगृह्य संज्ञक सम्बन्धि प्रकृतिभाव को रेखांकित करें तथा सूत्र का भी उल्लेख करें (क) कवी आगच्छतः।

(ख) पाणी उत्क्षिपति।

(ग) वटू उच्छलतः

(घ) नेत्रे आमृशति।

(ङ) ऋतू अतीतौ।

(च) अमी ईहन्ते।

(छ) अमी अशन्ति।

(ज) अमू आस्ताम्।

(झ) अम् अयोध्यायां दृष्टौ।

(य) मियो आगच्छतः।

(ट) अहो अद्य महोष्णता।

(ठ) अथो अपि।

(ड) इदं सत्यमुताहो इदम्।

(ढ) गौरी आह।

(न) नदी अवतरति।

(प) धनी उवाच।

(फ) नदी एधते।

8.5 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके होगें कि -

1. वर्णों का अपनी मूल अवस्था में रह जाना, विकारभाव को प्राप्त न होना प्रकृतिभाव है।
2. लघुसिद्धान्त कौमुदी के सन्धि-प्रकरण प्रकृतिभाव- विधायक चार सूत्र है- सर्वत्र विभाषा गोः प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च तथा - ऋत्यकः क्या होता है।

3. सर्वत्र विभाषा गोः - लौकिक संस्कृत भाषा- साहित्य अथवा वैदिक संस्कृत भाषा- साहित्य मे एङन्तः (ए हो तो विकल्प से प्रकृतिभाव होता है।

4. प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् - प्लुतसंज्ञक और प्रगृह्य संज्ञक को अच् परे रहने पर प्रकृतिभाव होता है।

5. प्रगृह्य संज्ञा विधायक पॉच सूत्र यहॉ उपलब्ध होते हैं।

6. - ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम् - ईकारान्त, ऊकारान्त और एकारान्त द्विवचन की प्रगृह्य संज्ञा होती है। अदसो मात् - मकारान्त अदस् शब्द से पर ईकार और ऊकार की प्रगृह्य होती है। - निपात् एकाजनाड. - आड. को छोड़कर एक अच् वाले अथवा एक स्वर वाले निपात की प्रगृह्य संज्ञा होती है । - ओत् - ओदन्त निपात की प्रगृह्य संज्ञा होती है। -

7. उपर्युक्त सूत्रों से विहित प्रगृह्य संज्ञक वर्णों का प्रकृतिभाव होता है।

8. इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च - पदान्त ' इक् ' को सवर्ण भिन्न अच् परे रहते विकल्प से प्रकृतिभाव होता है और ह्रस्व भी होता है।

9. ऋत्यकः - ह्रस्व ऋकार (ऋत्) परे रहते ' अक् ' के स्थान पर ह्रस्व तथा प्रकृतिभाव हो।

8.6 शब्दावली

1.**लौकिक संस्कृत भाषा**- साहित्य- वैदिक संस्कृत भाषा- साहित्य के अनन्तर प्रयुक्त संस्कृत भाषा तथा उसमे लिखित लौकिक संस्कृत भाषा-साहित्य के नाम से जाना जाता है। सामान्य रूप से वेदाङ साहित्य से अद्यावधि पर्यन्त प्रयुक् संस्कृत भाषा एवं उसमें लिखित साहित्य इस कोटि में है।

2. **वैदिक संस्कृत भाषा**,साहित्य ,मंत्र और ब्राह्मण साहित्य को वेद के नाम से जाना जाता है। मन्त्र के अर्न्तगत ऋक् संहिता, यजुः संहिता, साम संहिता तथा अथर्व संहिता हैं। ब्राह्मण , आरण्यक् तथा उपनिषत् सम्बन्धि ग्रन्थ आते हैं। इन सभी ग्रन्थों को वैदिक साहित्य तथा इनमें प्रयुक्त भाषा को वैदिक संस्कृत भाषा कहते हैं।

3**. पद** - सुबन्त और तिङन्त की पद संज्ञा होती है। सुप् आदि इक्कीस प्रत्यय जिस प्रातिपदिक के अन्त में हो उसे सुबन्त कहते हैं। तिप् आदि अठारह प्रत्यय जिस धातु के अन्त में हो उसे तिङन्त कहते हैं।

4. **प्रातिपदिक** - मूल शब्द प्रतिपदिक कहलाता है। पाणिनि के अनुसार धातु, प्रत्यय और प्रत्ययान्त को छोड़कर अर्थवान् शब्द स्वरूप की प्रतिपदिक संज्ञा होती है। इसके अतिरिक्त कृत्प्रत्ययान्त, तद्धितयुक्त और समास की भी प्रातिपदिक संज्ञा होती है।

5. **टि** - अचों या स्वरों में जो अन्तिम स्वर है, वह आदि में जिसके , उस समुदाय की टि संज्ञा होती है। यथा ' मनस् ' में ' म्, अ, स् ' के अर्न्तगत दो प्रकार है, परन्तु अन्तिम अकार ' स् ' से ठीक पहले है अर्थात् ' स 'के आदि मे है, अतः ' अस् ' की टि संज्ञा होती है।

6. **निपात** - द्रव्य भिन्न अर्थ में वर्तमान ' च ' आदि की निपात संज्ञा होती है। च, वा, ह इत्यादि चौवालिस शब्दों की गिनती संज्ञा प्रकरण में उपलब्ध है। इनके अतिरिक्त प्र आदि बाईस उपसर्ग की भी निपात संज्ञा होती है।

8.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. (क) हर् अत्र (ख) राम् अत्र

(ग) सीते (घ) बालक अत्र

(इ.) राधे अत्र

2.(क) कवी आगच्छतः - ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्' से प्रगृह्य संज्ञा तथा प्लुतप्रगृह्याऽचि नित्यम् से प्रकृतिभाव।

(ख) पाणी उत्क्षिपति- ,,

(ग) वटू आमृशति - ,,

(घ) नेत्रे आमृशति - ,,

(इ.) ऋतु अतीतौ - ,,

(च) अमी ईहन्ते - ' अदसो मात् ' से प्रगृह्य संज्ञा तथा ' प्लुतप्रगृह्याऽचि नित्यम् ' से प्रकृतिभाव।

(छ) अमी अश्नन्ति - ,,

(ज) अमू आस्ताम् - ,,

(झ) अमू अयोध्यायां दृष्टौ ,,

(ञ) मिथो आगच्छतः - ' ओत् ' से प्रगृह्य संज्ञा तथा ' प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् ' से प्रकृतिभाव '

(ट) अहो अद्य महोष्णता - ,,

(ठ)अथो अपि - ,,

(ड.) इदं सत्यमुताहो इदम् - ,,

(ढ़)रगौरि आह - ' इको ऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च '

(ण) नदि अवतरति - ,,

(त) ध्वनि उवाच - ,,

(ध) नदि एधते - ,,

8.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वरदराज, लघुसिद्धान्त कौमुदी, व्याख्याकार एवं सम्पादक- श्री धरानन्द शास्त्री, (2000) मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली

2. वरदराज, लघुसिद्धान्तकौमुदी, व्याख्याकार- महेश सिंह कुशवाहा, (1994) चौखम्बा विद्याभवन,वाराणसी

8.9 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. मिश्र,कमलाकान्त,व्याकरण सौरभम्, (2002) एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली।
2. शास्त्री, चक्रधर नौटियाल ' हंस ', वृहद् अनुवाद चन्द्रिका, (1984) मोतीलाल बनारसीदास,नई दिल्ली
3. शास्त्री, नेमिचन्द्र, स्नातक संस्कृत व्याकरण, (संवत 2032) ज्ञानदा प्रकाशन, पटना

8.10 निबन्धात्मक प्रश्न

(क) प्रकृतिभाव पर एक निबन्ध लिखें।

(ख) निम्नलिखित विषयों पर टिप्पणी लिखें।

(ग) प्लुत सम्बन्धि प्रकृतिभाव।

(घ) प्रगृह्य संज्ञा विधायक सूत्र।

इकाई 9.सन्धि प्रकरण के अन्तर्गत संज्ञा सूत्रों की व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना

नीतिशास्त्र व्याकरण एवं अनुवाद से सम्बन्धित यह नौवीं इकाई है। इससे पहले की इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप बता सकेंगे कि प्रकृतिभाव क्या है ? प्रकृतिभाव किन परिस्थितियों में होता है? प्लुत और प्रगृह्य क्या है ? इनका किस परिस्थित में प्रकृतिभाव हो जाता हैं ? सन्धि और प्रकृतिभाव में क्या अन्तर है ? प्रकृतिभाव विधायक सूत्र कितने हैं तथा उनका प्रयोग किस प्रकार किया जा सकता है ?

प्रकृतिभाव एवं प्रकृतिभाव विधायक सूत्रों की व्याख्या एवं प्रयोग जान लेने के पश्चात् आप सन्धि प्रकरण के अन्तर्गत आने वाले सूत्रों का विधिवत् अध्ययन कर पाएंगे। इस इकाई में मुख्य रूप से स्वर, व्यंजन एवं विसर्ग सन्धि के अन्तर्गत आने वाले संज्ञा सूत्रों की व्याख्या प्रस्तुत की जाएगी।

इस इकाई के अध्ययन के अनन्तर आप सन्धि-प्रकरण के अन्तर्गत आने वाले संज्ञा सूत्रों को व्याख्या सहित समझा पाएंगे।

9.2 उद्देश्य

1. सामान्य रूप से संज्ञा सूत्रों को जान पाएंगे।
2. संस्कृत व्याकरण में अनेक प्रकार के संज्ञा सूत्रों का निर्माण पाणिनि ने क्यों किया? इसको समझ पाएंगे।
3. भाषा की संरचना के नियम को समझने में संज्ञा की क्या उपयोगिता है- इसको जान पाएंगे।
4. स्वर, व्यंजन और विसर्ग सन्धि के प्रकरण में संज्ञा सूत्रों की उपयोगित को जान पाएंगे।
5. संज्ञा सूत्रों के कथन के अनन्तर ही उनका प्रयोग सम्भव है- उसको समझ पाएंगे।
6. प्रमुख सन्धि यथा यण्, गुण, वृद्धि आदि की अपनी-अपनी संज्ञा है- उसे जान पाएंगे।
7. उपर्युक्त संज्ञा सूत्रों के प्रयोग में अन्य संज्ञा सूत्र किस प्रकार सहायक सिद्ध हो रहे हैं- उसे समझ पाएंगे।
8. सन्धि- प्रकरण के अन्तर्गत कुल कितने संज्ञा सूत्र हैं- उसे जान पाएंगे।
9. संज्ञा सूत्र एवं विधि सूत्र में भेद को समझ पाएंगे।
10. अन्य भाषा सम्बन्धी व्याकरण में ऐसे संज्ञा सूत्रों का निर्माण कर पाएंगे।
11. आधुनिक भाषा विज्ञान की तकनीकी शब्दावली को सरलता पूर्वक हृदयंगम कर पाएंगे

9.3 सन्धि प्रकरण एवं संज्ञा सूत्र - अर्थ एवं प्रतिपाद्य

संज्ञा प्रकरण की इकाई और स्वर सन्धि' में आप जान चुके हैं कि संज्ञा एवं स्वरों से क्या तात्पर्य है। संज्ञा का अर्थ अभिधान या नाम हैं व्याकरण शास्त्र की रचना के आरम्भ में कुछ तकनीकी शब्दावली का नाम निर्धारित कर दिया जाता है ऐसा अष्टाध्यायी के आरम्भ में ही

उपलब्ध हो जाता है। परन्तु सिद्धान्तकौमुदी, लघु सिद्धान्तकौमुदी आदि प्रक्रिया परक व्याकरण के ग्रन्थों में संज्ञा सूत्र सम्पूर्ण ग्रन्थ में आवश्यकता के अनुरूप उपलब्ध होते हैं। इसी क्रम में आप देखेंगे कि सन्धि-प्रकरण में भी संज्ञा सम्बन्धी अनेक सूत्र उपलब्ध होते हैं। यथा- यण् गुण वृद्धि आदि के अलग-अलग संज्ञा सूत्र दिये गये हैं। इनके द्वारा एक बार जब आप किसी एक संज्ञा-सूत्र के अन्तर्गत कितने वर्णों का अभिधान होता है-उसको जान लेंगे तब उन वर्णों का विधि सूत्र के द्वारा किस प्रकार विधान होता है- उसे भी सहजता पूर्वक जान पाएंगे। यथा- अदेङ् गुणः- संज्ञा सूत्र है। इसका अर्थ है- अ, ए तथा ओ की गुण संज्ञा होती है। इसे जानने के बाद ' आद्गुणः ' से इन वर्णों का विधान हो पाता है। इन संज्ञा सूत्रों के अतिरिक्त सन्धि प्रकरण में अन्य संज्ञा सूत्र भी है यथा - टि , प्रगृहय् इत् इत्यादि जो सन्धि प्रक्रिया के क्रम में अपना योगदान देते हैं। प्रस्तुत इकाई में आप 'सन्धि -प्रकरण' के अन्तर्गत आने वाले ऐसे ही संज्ञा सूत्रों का अध्ययन करेंगे।

9.4 सन्धि प्रकरण के अन्तर्गत संज्ञा सूत्र

प्रस्तुत प्रसंग में आप सन्धि प्रकरण के अन्तर्गत उल्लिखित संज्ञा सूत्रों को सम्यक् प्रकार से जानेंगे। ये क्रमश: निम्नलिखित है-

1.अदेङ् गुण: 1.1.2

अत् एङ् च गुण संज्ञः स्यात्।

अर्थ- अत् (ह्रस्व अकार) तथा एङ् (ए तथा ओ) की गुण संज्ञा होती है। यहाँ ध्यान देने योग्य विषय यह है कि 'अत्' से तात्पर्य केवल ह्रस्व आकार का है। जिस भी स्वर के साथ 'त्' जुड़ जाता है उससे केवल उसी का बोध होता है। यहाँ 'अत्' में 'अ' के साथ 'त्' जुड़ा है, अतः केवल ह्रस्व अकार का बोध होगा। किन्तु यदि 'आत्' शब्द का प्रयोग होता है तब 'दीर्घ आ' का बोध होगा ह्रस्व अकार का नहीं। इसी बात को पाणिनी ने 'तपरस्तत्कालस्य' सूत्र के माध्यम से समझाया हैं इस सूत्र के अनुसार जिस स्वर से परे तकार हो तथा जो स्वर तकार से परे हो ऐसा उच्चारण किया गया स्वर केवल अपने उसी रूप की संज्ञा का बोधक होता है। उदाहरण के लिये उपर्युक्त सूत्र 'अदेङ् गुणः' में 'अ' के परे तकार है अतः 'अत्' से केवल ह्रस्व अकार का बोध होगा, दीर्घ या प्लुत का नहीं। इसी प्रकार 'त्' के परे 'एङ्' है, अतः केवल 'ए' और 'ओ' को ही बोध होगा, 'ऐ' और 'औ' का नहीं निष्कर्षतः सूत्रार्थ है कि अ,ए तथा ओ की गुण संज्ञा होती है।

2. उपदेशेऽजनुनासिक इत् 1.3.2

उपेदेशेऽनुनासिकोऽज् इत्संज्ञः स्यात् । प्रतिज्ञानुनासिक्याः पाणिनीयाः। लण् सूत्र स्थावर्णेन सहोच्चार्यमाणो रेफो रलयो: संज्ञा।

अर्थ- जो अच् (स्वर) उपदेश अवस्था में अनुनासिक हो, उसकी इत्संज्ञा होती हें अनुनासिक का बोध पाणिनि के कथन से ही सम्भव होता है। ' लण् ' सूत्र में स्थित अवर्ण के साथ उच्चारित 'र्' और ' ल् ' की अनुनासिक संज्ञा है।

यहाँ तात्पर्यार्थ यह है कि अनुनासिक अच् (स्वर) की इत्संज्ञा होती है। परन्तु इस अनुनासिक स्वर का ज्ञान कैसे हो? इसका उपचार यह है पाणिनि के द्वारा जिस स्वर को अनुनासिक कह दिया गया है, वही अनुनासिक माना जाता है।

अतः उपदेश से यहाँ तात्पर्य पाणिनि के द्वारा कहे गये अनुनासिक स्वर। उदाहरण के लिये 'र' प्रत्याहार में ' र्+अ ' है इसके माधम से 'रकार' और 'लकार' का बोध होता है। ' र ' प्रत्यहार में 'हयवरट्' से 'रकार' तथा 'लण्' से लकारोत्तरवर्ती अकार लिया गया। क्योंकि पाणिनि ने 'ल् अ ण्' में अकार को अनुनासिक मान है, अतः इसकी अर्थात् 'अ' की इत्संज्ञा होती हैं सूत्र के अनुसार यहाँ 'अ' उपदेश है, क्योंकि पाणिनि के द्वारा प्रोक्त है तथा अनुनासिक स्वर भी हैं इसी प्रकार 'राम$सु' में 'स् उ' का उकार अनुनासिक है तथा 'राम सुप् में सकार का उकार अनुनासिक नहीं है पहले 'उकार' की इत्संज्ञा होती है तथा दूसरे 'उकार' की इत्संज्ञा नहीं होती है। ऐसा इसलिये सम्भाव हुआ है, क्योंकि पाणिनि ने सुनिश्चित कर दिया है कि पहला 'उकार' अनुनासिक है तथा दूसरा उकार अनुनासिक नहीं है।

3.वृद्धिरादैच् 1.1.1 आदैच् वृद्धि संज्ञः स्यात्।

अर्थ- आत् (आकार) तथा ऐच् (ऐ तथा औ) की वृद्धि संज्ञा होती है। यहाँ की 'आत्' में 'आ' के साथ 'त्' है अतः केवल दीर्घ आकार का ही बोध होगा, ह्रस्व आदि का नहीं। इसके साथ ही 'त्' से परे 'ऐच्' प्रत्याहार है, अतः केवल ऐ तथा औ का ही बोध होगा, निष्कर्षतः सूत्र के अनुसार आ, ऐ तथा औ की वृद्धि संज्ञा होती है।

एक विशेष सूचना उपेक्षित है कि उपर्युक्त सूत्र पाणिनि रचित महान् ग्रन्थ 'अष्टाध्यायी' का प्रथम सूत्र है तथा इसके आदि में प्रयुक्त 'वृद्धि' शब्द मंगल कारक भी है।

4.उपसर्गाः क्रियायोगे 1.4.59

प्रादयः क्रियायोगे उपसर्गसंज्ञाः स्युः।

अर्थ - प्र, परा आदि की क्रिया के योग में उपसर्ग हो। प्र आदि की संख्या बाईस है जो इस प्रकार है -

प्र, परा, अप, सम्, अनु, अव, निस् निर्, दुस्, दुर्, वि, आङ्. नि, अधि, अपि, अति, सु, उत्, अभि, प्रति, परि तथा उप। इन सभी की क्रिया के योग में उपसर्गं संज्ञा होती है। उदाहरण के लिये 'प्र ऋच्छति' = प्राच्र्छति। यहाँ 'ऋच्छति' क्रिया है जिसके आदि योग से 'प्र' की 'उपसर्गाः क्रियायोगे' से उपसर्ग संज्ञा की गयी।

5.भूवादयो धातवः 1.3.1

क्रियावचिनो भ्वादयो धातुसंज्ञाः स्युः।

अर्थ- **क्रि**यावाचक भू आदि की धातु संज्ञा हो। 'भू' आदि को धातुपाठ में परिगणित किया गया है। क्योंकि धातुपाठ का पहला धातु 'भू' है, इसीलिये यहाँ सूत्र में 'भू' आदि कहा गया है। क्रियावाची कहने से पृथिवी वाचक 'भू' आदि शब्दों की धातु संज्ञा नहीं होती। आप सामन्य रूप

से जानते है कि 'भू' का एक अर्थ क्रियावाची 'सता' अर्थात् 'होना' है जिसकी धातु संज्ञा होती हैं। परन्तु 'भू' का एक अर्थ 'पृथ्वी' है जो क्रिया वाची न होकर प्रातिपदिक है, इसलिये इसकी धातु संज्ञा संभव नहीं है। 'भू' आदि में 'आदि' से तात्पर्य है पठ्, गम् इत्यादि।

6.अचोऽन्त्यादि टि 1.1.64

अचां मध्ये योऽन्त्यः, स आदिर्यस्य त संज्ञं स्यात्।

अर्थ- अचों (स्वरों) में जो अन्तिम स्वर है वह है आदि में जिसके, उस समुदाय की टि संज्ञा हो। आप इसे उदाहरण के माध्यम से अच्छी प्रकार समझ पाएंगे। जैसे- 'मनस्' शब्द में ' म् अ न् अ स्' के अन्तर्गत दो प्रकार है - ' म् ' के बाद अकार तथा 'न्' के बाद अकार। ' न् ' के बाद वाला अकार अन्तिम स्वर है वह 'स्' के आदि में स्थित है। अतः यहाँ 'अस्' की टि संज्ञा होगी। यदि अन्तिम स्वर किसी व्यंजन के आदि में न हो तो केवल उसी की टि संज्ञा हो जाएगी। 'यथा- 'मार्त अण्ड' यहाँ 'मार्त' में अन्तिम स्वर 'त्' के बाद 'अकार ' है। वह किसी व्यज्जन के आदि में नहीं है। अतः यहाँ केवल 'अकार' की टि संज्ञा होती है। 'मनीषा' में 'मनस् ईषा' मनस् के 'अस्' की टि संज्ञा होगी तथा शकन अन्धुः' में 'शक' का अन्तिम 'अकार' की टि संज्ञा होगी। आप इसी प्रकार अभ्यास करें।

7.चादयोऽ सत्त्वे 1.4.57

अद्रव्यार्थाश्चादयों निपाताः स्युः।

अर्थ- द्रव्यभिन्न अर्थ में वर्तमान 'च' आदि की निपात संज्ञा हो। 'लिङ्गसंख्यान्वयित्वं द्रव्यत्वम् ' - अर्थात् जिनमें लिंग् और संख्या का अन्वय होता है उन्हें द्रव्य कहते हैं। ऐसे द्रव्य भिन्न अर्थ में वर्तमान 'च' आदि की निपात संज्ञा हो। इससे स्पष्ट है कि निपात में लिंग और संख्या का अभाव होता है। यही कारण है कि निपात अव्यय की कोटि में आते हैं। 'च' आदि निपात निम्नलिखित है-

1. च - और
2. वा- विकल्प
3. ह- प्रसिद्धि
4. अह- पूजा
5. एव - ही
6. एवम् - ऐसा
7. नूनम् - निश्चय
8. शाश्वत् - निरन्तर

9. युगपद् - एकदम

10. भूमस् - फिर

11. कूपत् - प्रश्न, प्रशंसा

12. कुवित् - अधिक प्रशंसा

13. नेत् - शग्, अन्यथा, नही तो,

14. चेत् - यदि

15. चण् - यदि

16. यत्र - जहाँ

17. कच्चित् - प्रश्न

18. नह - निषेध पूर्वक प्रारम्भ

19. हन्त - हर्ष, विषाद;

20. माकिः - वर्जन

21. माकिम् - वर्जन

22. नकिः - वर्जन

23. नकिम् - वर्जन

24. माङ् - निषेध

25. नञ - निषेध

26. यावत् - जितना

27. तावत् - उतना

28. त्वै - वितर्क न्वै- वितर्क

29. द्वै - वितर्क

30. रै - दान आदर

31. श्रौषट् - हविर्दान

32. वौषट् - हविर्दान

33. स्वाहा - देवदान

34. स्वधा - पितृदान

35. वषट् - हविर्दान

36. नुम् - नुम्

37. तथापि - तो भी

38. खलु - निषेध, निश्चय

39. किल - प्रसिद्धि

40. अथो - प्रारम्भ

41. अथ- प्रारम्भ

42. सुष्ठु - अच्छा

43. स्म - भूत काल

44. आदह - प्रारम्भ, निन्दा।

8. प्रादयः 1.4.58 एतेऽपि तथा।

अर्थ- प्र, परा आदि बाईस की भी निपात संज्ञा हो। प्र, परा आदि की गणना इसी इकाई की सूत्र संख्या में की गयी है।

9. तस्य परमाम्रेडितम् 8.1.2 द्विरूक्तस्य परमाम्रेडित संज्ञं स्यात्।

अर्थ- जिसको दो बार कहा गया है उसके पर भाग की आम्रेडित संज्ञा हो। यथा- कान्$कान् ' यहाँ 'कान्' का दो बार प्रयोग हुआ है, अतः दूसरे 'कान्' की आम्रेडित संज्ञा होती है।

10. दूराद्धूते च 8.2.84 दूरात् सम्बोधने वाक्यस्य टेः प्लुतो वा।

अर्थ- दूर से संबोधन (पुकारने) में (प्रयुक्त) वाक्य की 'टि' को प्लुत संज्ञा हो विकल्प से। यहाँ दूर से तात्पर्य है जहाँ से सुनाने के लिये जोर से बोलना पड़े। उदाहरण के लिये 'आगच्छ कृष्णः अत्र गौश्चरति' - यह वाक्य दूर से पुरकारने के लिये प्रयुक्त हुआ है। इसमें भी 'आगच्छ कृष्णः 3 ' यह एक वाक्य है जिसमें 'कृष्ण' का णकारोत्तरवर्ती 'अ' उपर्युक्त सूत्र से प्लुत संज्ञक हुआ, क्योंकि वह टि संज्ञक है। टि संज्ञा के विषय में आप इसी इकाई के छठे सूत्र की व्याख्या जान चुके हैं। उपर्युक्त संज्ञा विधायक सूत्रों के अतिरिक्त कुछ अन्य सूत्र भी संज्ञा का विधान करते हैं, यथा- 'ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्,' 'अदसो मात''निपात् एकाजनाङ्,' 'ओत्' तथा 'सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे। इन सूत्रों के द्वारा प्रगृह्य संज्ञा का विधान होता है। इन सभी की व्याख्या

विस्तृत रूप से इकाई नौ में उपलब्ध है। यहाँ पुनः इन सभी की व्याख्या उचित नहीं होगी, पिष्टपेषण मात्र होगा।

अभ्यास प्रश्न -

1- निम्नलिखित वर्णों की संज्ञा को बतायें-

1. अ
2. आ
3. ऐ
4. औ
5. च
6. खलु
7. ए
8. ओ
9. भू
10. कान्कान्
11. चेत्
12. नूनम्

2- किन्हीं आठ-आठ निपातों एवं उपसर्गों का निम्नलिखित में से चयन करें-

1. सुष्ठु
2. प्र
3. परा
4. वा
5. निस्
6. ह
7. तथापि
8. अभि
9. प्रति
10. नञ
11. शश्वत्
12. अनु
13. अव
14. माङ्
15. तावत्
16. दुर्

3- निम्नलिखित में प्रगृह्य संज्ञक वर्णों का चयन करें-

1. हरी

2. उ
3. गंगे
4. अहो

9.5 सारांश

1. संज्ञा का अर्थ नाम या अभिधान है।
2. सन्धि-प्रकरण के अन्तर्गत अनेक संज्ञा विधायक सूत्र है।
3. अत् (ह्रस्व अकार) तथा एङ् (ए तथा ओ) की गुण संज्ञा होती है।
4. जो अच् (स्वर) उपदेश अवस्था में अनुनासिक हो, उसकी इत्संज्ञा होती है
5. अनुनासिक का विधान पाणिनि की प्रतिज्ञा पर आधारित है।
6. आत् (आकार) तथा ऐच् (ऐ तथा औ) की वृद्धि संज्ञा होती है।
7. प्र, परा आदि की क्रिया के योग में उपसर्ग संज्ञा होती है।
8. क्रियावाचक 'भू' आदि की धातु संज्ञा होती है।
9. अचों (स्वरों) में जो अन्तिम स्वर है वह है आदि में जिसके ,उस समुदाय की टि संज्ञा होती हैं
10. द्रव्यभिन्न अर्थ में वर्तमान 'च' आदि की निपात संज्ञा होती है।
11. प्र, परा आदि बाईस की भी निपात संज्ञा होती है।
12. जिसको दो बार कहा गया है उसके पर भाग की आम्रेडित संज्ञा होती है।
13. दूरी से सम्बोधन में प्रयुक्त वाक्य की 'टि' को प्लुत संज्ञा हो।
14. प्रगृह्य सम्बन्धी संज्ञा विधायक सूत्रों का सारांश आप इकाई नौ के 'सारांश' में जान चुके हैं। पुनः एक वहीं अवलोकन करें।

9.6 शब्दावली

1.**अव्यय** - जो तीनों लिंगे , सब विभक्तियों और सभी वचनों में विकार को प्राप्त नहीं होता। सतत एक जैसा रहता है वह अव्यय कहलाता है। यथा सभी निपात अव्यय होते हैं क्योंकि उनका तीनों लिगें, सभी विभक्तियों तथा सभी वचनों में प्रयोग नहीं होता। वे सदैव ही अवस्था में रहते हैं।

2. **अष्टाध्यायी**- पाणिनि के द्वारा विरचित महान् ग्रन्थ अष्टाध्यायी भाषा-संरचना सम्बन्धी विश्व का प्रथम ग्रन्थ है। इसकी रचना लगभग छठी शताब्दी (सब्) में हुई। इसमें कुल आठ अध्याय है। प्रत्येक अध्याय में चार-चार पाद है। इस ग्रन्थ में सूत्रों की संख्या लगभग चार हजार के आस पास है।

3.**विधि सूत्र**- 'कर्तव्यत्वेनोपदेशो विधिः' अर्थात् कर्तव्य या प्रयोग का विधान जिस सूत्र के द्वारा हो उसे विधि सूत्र कहते हैं। यथा- 'इको यणचि' में इक् के स्थान में यण् का आदेश होता है अच् परे रहते- यह विधि सूत्र का उदाहरण है।

9.7अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उत्तर-

1. गुण
2. वृद्धि
3. वृद्धि
4. वृद्धि
5. निपात
6. निपात
7. गुण
8. गुण
9. धातु
10. आम्रेडित
11. निपात

2. 1.	निपात	2.	उपसर्गनिपात
3-	निपात	4-	उपसर्गनिपात
4-	निपात	5-	उपसर्गनिपात
6-	निपात	7-	उपसर्गनिपात
8-	निपात	9-	उपसर्गनिपात
10-	निपात	11-	उपसर्गनिपात
12-	निपात	13-	उपसर्गनिपात
14-	निपात	15-	उपसर्गनिपात

3- ' हरी' का ' ई '

2-उ

3-गंगे का 'ए'

4-अहो का 'ओ'

9.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वरदराज, लघुसिद्धान्कौमुदी, व्याख्याकार एवं सम्पादक- श्री धरानन्द शास्त्री, (2000) मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली2.वरदराज, लघुसिद्धान्तकोमुदी, व्याख्याकार- महेश सिंह कुशवाह, (1994) चौरवम्बा विद्याभवन, वाराणसी

9.9 सहायक / उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. मिश्र, कमलाकान्त, व्याकरणसौरभम्, (2002) एन0सी0ई0 आर0टी0 नई दिल्ली
2. शास्त्री, चक्रधर नौटियाल 'हंस' बृहद् अनुवाद् चिन्द्रका, (1984) मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
3. शास्त्री, नेमिचन्द्र, स्नातक संस्कृत व्याकरण, (संवत् 2032) ज्ञानदा प्रकाशन , पटना।

9.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. सन्धि के अन्तर्गत संज्ञा विधायक सूत्रों पर विस्तृत निबन्ध लिखें।

2. टिप्पणी लिखें।

1. प्रगृह्य संज्ञा

4. गुण एवं वृद्धि संज्ञा